हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन जय सियाराम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय माँ तारा । जय गणेश जय शुभ आगारा ॥

[प्रथम संस्करण ८०,७००]
[द्वितीय संस्करण १०,६००]

वार्षिक मूल्य
भारतमें ४≡)
विदेशमें ६॥=)
(१० शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ।)
विदेशमें ।≡)
(८ पेंस)

Edited by H. P. Poddar and C. L. Goswami, M. A., Shastri.
Printed and Published by Ghanshyamdas Jalan at the Gita Press, Gorakhpur, U. P. (India)

श्रीहरिः

कल्याण फरवरी सन् १९४५ की

विषय-सूची

संकलित

चित्र-सूची

तिरंगा

इकरंगे (लाइन)
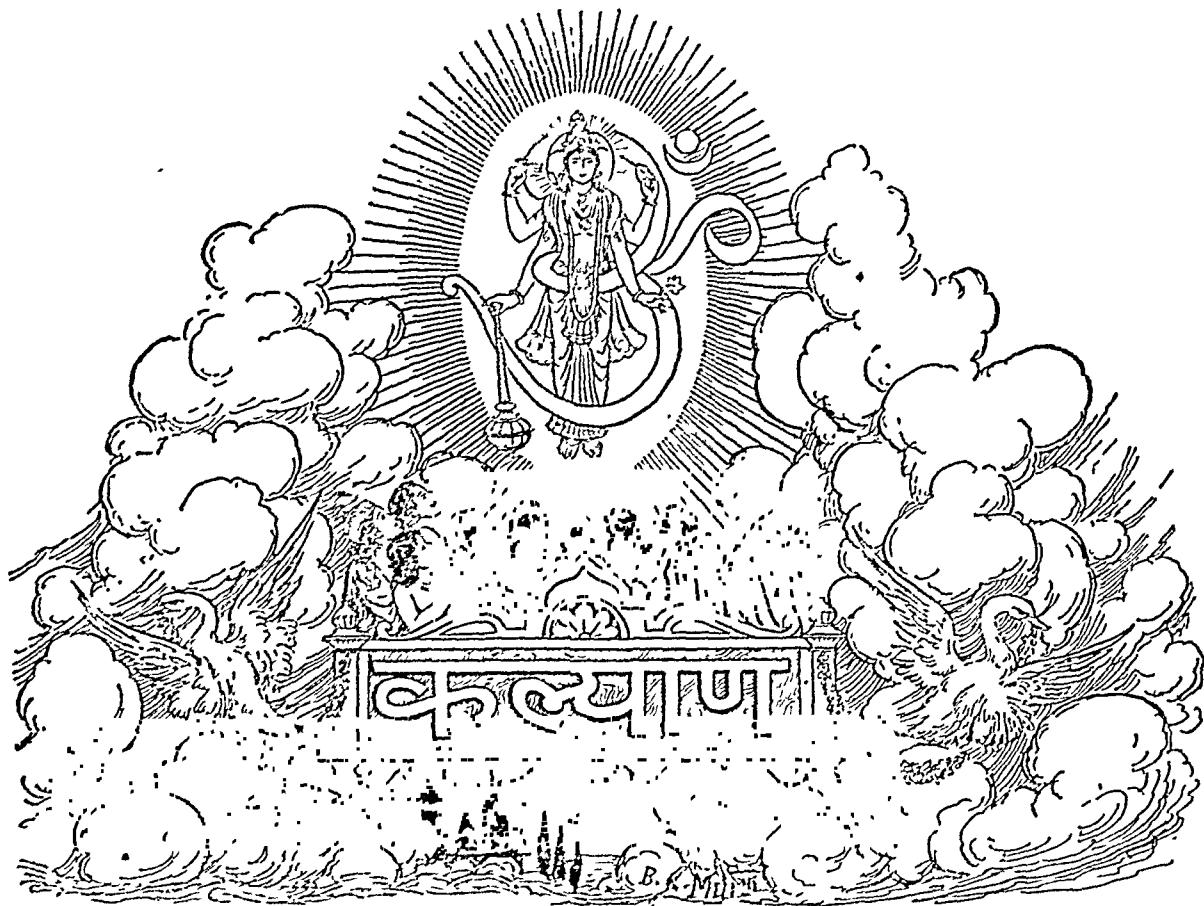
श्रीकृष्णके विश्वविमोहन रूपका ध्यान

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

कृष्णं च रामं शरणं व्रजन्ति जपन्ति जाप्यैः परिपूजयन्ति ।
दण्डप्रणामैः प्रणमन्ति विष्णुं तद्ध्यानयुक्ताः परिवैष्णवास्ते ॥

वर्ष १९ } गोरखपुर, फरवरी १९४५, सौर माघ २००१ { संख्या ५
पूर्ण संख्या २२१

नातः परं परमतोषविशेषपोषं
पश्यामि पुण्यमुचितं च परस्परेण ।
सन्तः प्रसज्ज्य यदनन्तगुणाननन्त-
श्रेयोनिधीनधिकभावजुषो भजन्ति ॥
(पद्म० पाताल० ८५ । ३४)

नारदजी कहते हैं—राजा अम्बरीष ! साधु-संत जो परस्पर मिलनेपर अधिक श्रद्धाके साथ भगवान् अनन्तके अनन्त कल्याणमय गुणोंका कीर्तन और श्रवण करते हैं, इससे बढ़कर परम संतोषकी वृद्धि तथा समुचित पुण्यकी प्राप्तिका साधन मुझे दूसरा कुछ नहीं दिखायी देता ।

नारायणकी महिमा

नारायणपरो धर्मस्तथा लोकाश्च शाश्वताः ।
नारायणपरा यज्ञाः शास्त्राणि विविधानि च ॥
वेदाः साङ्गास्तथा चान्ये विष्णुर्विश्वेश्वरो हरिः ।
पृथिव्यादीनि विविधाः पञ्चभूतानि सोऽव्ययः ॥
सर्वं विष्णुमयं ज्ञेयं विबुधैः सकलं जगत् ।
तथापि मानुषाः पापा न जानन्ति विमोहिताः ॥
तस्यैव मायया व्याप्तं चराचरमिदं जगत् ।
तन्मनास्तद्गतप्राणो जानाति परमार्थवित् ॥
ईश्वरः सर्वभूतानां विष्णुस्त्रैलोक्यपालकः ।
तस्मिन्नेव जगत् सर्वं तिष्ठति प्रभवत्यपि ॥
जगत् संहरते रुद्रः पालने विष्णुरुच्यते ।
उत्पत्तौ चाहमेवात्र तथान्ये लोकपालकाः ॥
सर्वाधारो निराधारः सकलो निष्कलस्तथा ।
अणुर्महांस्तथाप्यन्यत्तस्माच्च परतः परः ॥
तमेव शरणं यात सर्वसंहारकारकम् ।
स पिता जनितास्माकं कीर्तितो मधुसूदनः ॥

(पद्म० उत्तर० ८१ । ९४—१०१)

ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओ ! भगवान् नारायण ही धर्मके आश्रय हैं, सनातन लोक, यज्ञ तथा नाना प्रकारके शास्त्र भी नारायणमें ही पर्यवसित होते हैं । छहों अङ्गोंसहित वेद तथा अन्य आगम सर्वव्यापी विश्वेश्वर श्रीहरिके ही स्वरूप हैं । पृथ्वी आदि पाँच भूत भी वे ही अविनाशी परमेश्वर हैं । देवताओंसहित सम्पूर्ण जगत्को विष्णुमय ही जानना चाहिये । तथापि पापी मनुष्य मोहग्रस्त होनेके कारण इस बातको नहीं समझते । यह समस्त चराचर जगत् उन्हींकी मायासे व्याप्त है । जो मनसे भगवान्का ही चिन्तन करता है, जिसके प्राण भगवान्में ही लगे रहते हैं, वह परमार्थ-तत्त्वका ज्ञाता पुरुष ही इस रहस्यको जानता है। सम्पूर्ण भूतोंके ईश्वर भगवान् विष्णु ही तीनों लोकोंका पालन करनेवाले हैं । यह सारा संसार उन्हींमें स्थित है और उन्हींसे उत्पन्न होता है । वे ही रुद्ररूप होकर जगत्का संहार करते हैं। पालनके समय उन्हींको विष्णु कहते हैं तथा सृष्टिकालमें मैं (ब्रह्मा) और अन्यान्य लोकपाल भी उन्हींके स्वरूप हैं । वे सबके आधार हैं, परन्तु उनका आधार कोई नहीं है । वे सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त होते हुए भी उनसे रहित हैं। वे ही छोटे-बड़े तथा उनसे भिन्न हैं। साथ ही इन सबसे विलक्षण भी हैं । अतः देवताओ ! सबका संहार करनेवाले उन श्रीहरिकी ही शरणमें जाओ। वे ही हमारे जन्मदाता पिता हैं। उन्हींको मधुसूदन कहा गया है ।

सीताजीके त्यागकी बातसे शत्रुघ्नकी भी मूर्च्छा, लक्ष्मणका दुःखित चित्तसे सीताको जंगलमें छोड़ना और वाल्मीकिके आश्रमपर लव-कुशका जन्म एवं अध्ययन

शेषजी कहते हैं—मुने ! भरतको मूर्च्छित देख श्रीरघुनाथजीको बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने द्वारपालसे कहा—'शत्रुघ्नको शीघ्र मेरे पास बुला लाओ।' आज्ञा पाकर वह क्षणभरमें शत्रुघ्नको बुला लाया। आते ही उन्होंने भरतको अचेत और श्रीरघुनाथजीको दुखी देखा; इससे उन्हें भी बड़ा दुःख हुआ और वे श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके बोले—'आर्य ! यह कैसा दारुण दृश्य है ?' तब श्रीरामने धोबीके मुखसे निकला हुआ वह लोकनिन्दित वचन कह सुनाया तथा जानकीको त्यागनेका विचार भी प्रकट किया।

तब शत्रुघ्नने कहा—स्वामिन् ! आप जानकीजीके प्रति यह कैसी कठोर बात कह रहे हैं ! भगवान् सूर्यका उदय सारे संसारको प्रकाश पहुँचानेके लिये होता है; किन्तु उल्लुओंको वे पसंद नहीं आते, इससे जगत्की क्या हानि होती है ? इसलिये आप भी सीताको स्वीकार करें, उनका त्याग न करें; क्योंकि वे सती-साध्वी स्त्री हैं। आप कृपा करके मेरी यह बात मान लीजिये।

महात्मा शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बारंबार वही (सीताके त्यागकी) बात दुहराने लगे, जो एक बार भरतसे कह चुके थे। भाईकी वह कठोर बात सुनते ही शत्रुघ्न दुःखके अगाध जलमें डूब गये और जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भाई शत्रुघ्नको भी अचेत होकर गिरा देख श्रीरामचन्द्रजीको बहुत दुःख हुआ और वे द्वारपालसे बोले—'जाओ, लक्ष्मणको मेरे पास बुला लाओ।' द्वारपालने लक्ष्मणजीके महलमें जाकर उनसे इस प्रकार निवेदन किया—'स्वामिन् ! श्रीरघुनाथजी आपको याद कर रहे हैं।' श्रीरामका आदेश सुनकर वे शीघ्र उनके पास गये। वहाँ भरत और शत्रुघ्नको मूर्च्छित तथा श्रीरामचन्द्रजीको दुःखसे व्याकुल देखकर लक्ष्मण भी दुखी हो गये। वे श्रीरघुनाथजीसे बोले—'राजन् ! यह मूर्च्छा आदिका दारुण दृश्य कैसे दिखायी दे रहा है ? इसका सब कारण मुझे शीघ्र बताइये।'

उनके ऐसा कहनेपर महाराज श्रीरामने लक्ष्मणको वह सारा दुःखमय वृत्तान्त आरम्भसे ही कह सुनाया। सीताके परित्यागसे सम्बन्ध रखनेवाली बात सुनकर वे बारंबार उच्छ्वास खींचते हुए सन्न हो गये। उन्हें कुछ भी उत्तर देते न देख श्रीरामचन्द्रजी शोकसे पीड़ित होकर बोले—'मैं अपयशसे कलङ्कित हो इस पृथ्वीपर रहकर क्या करूँगा। मेरे बुद्धिमान् भ्राता सदा मेरी आज्ञाका पालन करते थे, किन्तु इस समय दुर्भाग्यवश वे भी मेरे प्रतिकूल बातें करते हैं। कहाँ जाऊँ ? कैसे करूँ ? पृथ्वीके सभी राजा मेरी हँसी उड़ायेंगे।' श्रीरामको ऐसी बातें करते देख लक्ष्मणने आँसू रोककर व्यथित स्वरमें कहा—'स्वामिन् ! विषाद न कीजिये। मैं अभी उस धोबीको बुलाकर पूछता हूँ, संसारकी सभी स्त्रियोंमे श्रेष्ठ जानकीजीकी निन्दा उसने कैसे की है ? आपके राज्यमें किसी छोटे-से-छोटे मनुष्यको भी बलपूर्वक कष्ट नहीं पहुँचाया जाता। अतः उसके मनमें जिस तरह प्रतीति हो, जैसे वह संतुष्ट रहे, वैसा ही उसके साथ बर्ताव कीजिये [परन्तु एक बार उससे पूछना आवश्यक है]। जनककुमारी सीता मनसे अथवा वाणीसे भी आपके सिवा दूसरेको नहीं जानतीं; अतः उन्हे तो आप स्वीकार ही करें, उनका त्याग न करें। मेरे ऊपर कृपा करके मेरी बात मानें।'

ऐसा कहते हुए लक्ष्मणसे श्रीरामने शोकातुर होकर कहा—'भाई ! मैं जानता हूँ सीता निष्पाप है; तो भी लोकापवादके कारण उसका त्याग करूँगा। लोकापवादसे निन्दित हो जानेपर मैं अपने शरीरको भी त्याग सकता हूँ; फिर घर, पुत्र, मित्र तथा उत्तम वैभव आदि दूसरी-दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या है। इस समय धोबीको बुलाकर पूछनेकी आवश्यकता नहीं है। समय आनेपर सब कुछ अपने-आप हो जायगा; लोगोंके चित्तमे सीताके प्रति स्वयं ही प्रतीति हो जायगी। जैसे कच्चा घाव चिकित्साके योग्य नहीं होता, समयानुसार जब वह पक जाता है तभी दवासे नष्ट होता है, उसी प्रकार समयसे ही इस कलङ्कका मार्जन होगा। इस समय मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन न करो। पतिव्रता सीताको जंगलमें छोड़ आओ।' यह आदेश सुनकर लक्ष्मण एक क्षणतक शोकाकुल हो दुःखमें डूबे रहे, फिर मन-ही-मन

विचार किया—'परशुरामजीने पिताकी आज्ञासे अपनी माता-का भी वध कर डाला था; इससे जान पड़ता है, गुरुजनोंकी आज्ञा उचित हो या अनुचित, उसका कभी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। अतः श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय करनेके लिये मुझे सीताका त्याग करना ही पड़ेगा।'

यह सोचकर लक्ष्मण अपने भाई श्रीरघुनाथजीसे बोले-'सुव्रत! गुरुजनोंके कहनेसे नहीं करने योग्य कार्य भी कर लेना चाहिये, किन्तु उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन कदापि उचित नहीं है। इसलिये आप जो कुछ कहते हैं, उस आदेशका मैं पालन करूँगा।' लक्ष्मणके मुखसे ऐसी बात सुनकर श्रीरघुनाथ-जीने उनसे कहा—'बहुत अच्छा; बहुत अच्छा; महामते! तुमने मेरे चित्तको संतुष्ट कर दिया। अभी-अभी रातमें जानकीने तापसी स्त्रियोंके दर्शनकी इच्छा प्रकट की थी, इसी लिये उसे रथपर बिठाकर जंगलमें छोड़ आओ।' फिर सुमन्त्रको बुलाकर उन्होंने कहा—'मेरा रथ अच्छे-अच्छे घोड़ों और वस्त्रोंसे सजाकर तैयार करो।' श्रीरघुनाथजीका आदेश सुनकर वे उनका उत्तम रथ तैयार करके ले आये। रथको आया देख भ्रातृ-भक्त लक्ष्मण उसपर सवार हुए और जानकीजीके महलकी ओर चले। अन्तःपुरमें पहुँचकर वे मिथिलेशकुमारी सीतासे बोले—'माता जानकी!

श्रीरघुनाथजीने मुझे आपके महलमें भेजा है। आप तापसी स्त्रियोंके दर्शनके लिये वनमें चलिये।'

जानकी बोलीं—श्रीरघुनाथजीके चरणोंका चिन्तन करनेवाली यह महारानी मैथिली आज धन्य हो गयी, जिसका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये स्वामीने लक्ष्मणको भेजा है! आज मैं वनमें रहनेवाली सुन्दरी तपस्विनियोंको, जो पतिको ही देवता मानती हैं, मस्तक झुकाऊँगी और वस्त्र आदि अर्पण करके उनकी पूजा करूँगी।

ऐसा कहकर उन्होंने सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, बहुमूल्य आभूषण, नाना प्रकारके रत्न, उज्ज्वल मोती, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थ तथा चन्दन आदि सहस्रों प्रकारकी विचित्र वस्तुएँ साथ ले लीं। ये सारी चीजें दासियोंके हाथों उठवाकर वे लक्ष्मणकी ओर चलीं। अभी घरका चौकट भी नहीं लाँघने पायी थीं कि लड़खड़ाकर गिर पड़ीं। यह एक अपशकुन था; परन्तु वनमें जानेकी उत्कण्ठाके कारण सीताजीने इसपर विचार नहीं किया। वे अपना प्रिय कार्य करनेवाले देवरसे बोलीं—'वत्स! कहाँ वह रथ है, जिसपर मुझे ले चलोगे?' लक्ष्मणने सुवर्णमय रथकी ओर संकेत किया और जानकीजीके साथ उसपर बैठकर सुमन्त्रसे बोले—'चलाओ घोड़ोंको।'

इसी समय सीताका दाहिना नेत्र फड़क उठा, जो भावी दुःखकी सूचना देनेवाला था। साथ ही पुण्यमय पक्षी विपरीत दिशासे होकर जाने लगे। यह सब देखकर जानकीने देवरसे कहा—'वत्स! मैं तो तपस्विनियोंके दर्शनकी इच्छासे यात्रा करना चाहती हूँ, फिर ये दुःख देनेवाले अपशकुन कैसे हो

रहे हैं ! श्रीरामका, भरतका तथा तुम्हारे छोटे भाई शत्रुघ्नका कल्याण हो; उनकी प्रजामें सर्वत्र शान्ति रहे, कहीं कोई विप्लव या उपद्रव न हो।'

जानकीजीको ऐसी बातें करते देख लक्ष्मण कुछ बोल न सके, आँसुओंसे उनका गला भर आया। इसी प्रकार आगे जाकर सीताजीने फिर देखा, बहुत-से मृग बायीं ओरसे घूमकर निकले जा रहे हैं। वे भारी दुःखकी सूचना देनेवाले थे। उन्हें देखकर जानकीजी कहने लगीं—'आज ये मृग जो मेरी बायीं ओरसे निकल रहे हैं, सो ठीक ही है; श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको छोड़कर अन्यत्र जानेवाली सीताके लिये ऐसा होना उचित ही है। नारियोंका सबसे बड़ा धर्म है—अपने स्वामीके चरणोंका पूजन, उसीको छोड़कर मैं अन्यत्र जा रही हूँ; अतः मेरे लिये जो दण्ड मिले, उचित ही है।' इस प्रकार मार्गमें पारमार्थिक विचार करती हुई देवी जानकीने गङ्गाजीको देखा, जिनके तटपर मुनियोंका समुदाय निवास करता है। जिनके जलकणोंका स्पर्श होते ही राशि-राशि महापातक पलायन कर जाते हैं—उन्हें वहाँ चारों ओर अपने रहने योग्य कोई स्थान नहीं दिखायी देता। गङ्गाके किनारे पहुँचकर लक्ष्मणजीने रथपर बैठी हुई सीताजीसे आँसू बहाते हुए कहा—'भाभी ! चलो, लहरोंसे भरी हुई गङ्गाको पार करो।' सीताजी देवरकी बात सुनकर तुरंत रथसे उतर गयीं।

तदनन्तर, नावसे गङ्गाके पार होकर लक्ष्मणजी जानकीजीको

साथ लिये वनमें चले। वे श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन करनेमें कुशल थे; अतः सीताको अत्यन्त भयंकर एवं दुःखदायी जंगलमें ले गये—जहाँ बबूल, खैरा और धव आदिके महाभयानक वृक्ष थे, जो दावानलसे दग्ध होनेके कारण सूख गये थे। ऐसा जंगल देखकर सीता भयके कारण बहुत चिन्तित हुईं। काँटोंसे उनके कोमल चरणोंमें घाव हो गये। वे लक्ष्मणसे बोलीं—'वीरवर ! यहाँ अच्छे-अच्छे ऋषि-मुनियोंके रहने योग्य आश्रम मुझे नहीं दिखायी देते, जो नेत्रोंको सुख प्रदान करनेवाले हैं तथा महर्षियोंकी तपस्विनी स्त्रियोंके भी दर्शन नहीं होते। यहाँ तो केवल भयंकर पक्षी, सूखे वृक्ष और दावानलसे सब ओर जलता हुआ यह वन ही दृष्टिगोचर हो रहा है। इसके सिवा, मैं तुमको भी किसी भारी दुःखसे आतुर देखती हूँ। तुम्हारी आँखें आँसुओंसे भरी हैं, इनसे व्याकुलताके भाव प्रकट होते हैं; और मुझे भी पग-पगपर हजारों अपशकुन दिखायी देते हैं। सच बताओ, क्या बात है ?'

सीताजीके इतना कहनेपर भी लक्ष्मणजीके मुखसे कोई भी बात नहीं निकली, वे चुपचाप उनकी ओर देखते हुए खड़े रहे। तब जानकीजीने बारंबार प्रश्न करके उनसे उत्तर देनेके लिये बड़ा आग्रह किया। उनके आग्रहपूर्वक पूछनेपर लक्ष्मणजीका गला भर आया। उन्होंने शोक प्रकट करते हुए सीताजीको उनके परित्यागकी बात बतायी। मुनिवर ! वह वज्रके तुल्य कठोर वचन सुनकर सीताजी जड़से कटी हुई लताकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं। विदेहकुमारीको पृथ्वीपर पड़ी देख लक्ष्मणजीने पल्लवोंसे हवा करके उन्हें सचेत किया। होशमें आनेपर जानकीजीने कहा—"देवर ! मुझसे परिहास न करो। मैंने कोई पाप नहीं किया है, फिर श्रीरघुनाथजी मुझे कैसे छोड़ देंगे। वे परम बुद्धिमान् और महापुरुष हैं, मेरा त्याग कैसे कर सकते हैं। वे जानते हैं मैं निष्पाप हूँ; फिर भी एक धोबीके कहनेसे मुझे छोड़ देंगे ? [ऐसी आशा नहीं है।]" इतना कहते-कहते वे फिर बेहोश हो गयीं। इस बार उन्हें मूर्च्छित देख लक्ष्मणजी फूट-फूटकर रोने लगे। जब पुनः उनको चेत हुआ, तब लक्ष्मणको दुःखसे आतुर और रुद्धकण्ठ देखकर वे बहुत दुखी हुईं और बोलीं—"सुमित्रानन्दन ! जाओ, तुम धर्मके स्वरूप और यशके सागर श्रीरामचन्द्रजीसे तपोनिधि वसिष्ठमुनिके सामने ही मेरी एक बात पूछना—'नाथ ! यह जानते हुए भी कि सीता निष्पाप है, जो आपने मुझे त्याग दिया है, यह बर्ताव आपके कुलके अनुरूप हुआ है या शास्त्र-ज्ञानका फल है ? मैं सदा आपके चरणोंमें ही अनुराग रखती हूँ; तो भी जो आपके द्वारा मेरा त्याग हुआ है, इसमें आपका कोई दोष नहीं है। यह सब मेरे भाग्य-दोषसे हुआ है, इसमें मेरा प्रारब्ध ही कारण है। वीरवर !

आपका सदा और सर्वत्र कल्याण हो। मैं इस वनमें आपका ही स्मरण करती हुई प्राण धारण करूँगी। मन, वाणी और क्रियाके द्वारा एकमात्र आप ही मेरे सर्वोत्तम आराध्यदेव हैं। रघुनन्दन! आपके सिवा और सब कुछ मैंने अपने मनसे तुच्छ समझा है। महेश्वर! प्रत्येक जन्ममें आप ही मेरे पति हों और मैं आपके ही चरणोंके चिन्तनसे अपने अनेकों पापों-का नाश कर आपकी सती-साध्वी पत्नी बनी रहूँ—यही मेरी प्रार्थना है।'

''लक्ष्मण! मेरी सासुओंसे भी यह संदेश कहना—'माताओ! अनेकों जन्तुओंसे भरे हुए इस घोर जंगलमें मैं आप सब लोगोंके चरणोंका स्मरण करती हूँ। मैं गर्भवती हूँ, तो भी महात्मा रामने मुझे इस वनमें त्याग दिया है।' 'सौमित्रे! अब तुम मेरी बात सुनो—श्रीरघुनाथजीका कल्याण हो। मैं अभी प्राण त्याग देती, किन्तु विवश हूँ; अपने गर्भमें श्रीरामचन्द्रजीके तेजकी रक्षा कर रही हूँ। तुम जो उनके वचनोंको पूर्ण करते हो, सो ठीक ही है; इससे तुम्हारा कल्याण होगा। तुम श्रीरामके चरणकमलोंके सेवक और उनके आधीन हो, अतः तुम्हें ऐसा ही करना उचित है। अच्छा, अब श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाओ; तुम्हारे मार्ग मङ्गलमय हों। मुझपर कृपा करके कभी-कभी मेरी याद करते रहना।''

इतना कहकर सीताजी लक्ष्मणजीके सामने ही अचेत हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उन्हें मूर्च्छित देख लक्ष्मणजी पुनः दुःखमें

डूब गये और वस्त्रके अग्रभागसे पंखा झलने लगे। जब होशमें आयीं, तब उन्हें प्रणाम करके वे बोले—'देवि! अब मैं श्रीरामके पास जाता हूँ, वहाँ जाकर मैं आपका सब संदेश कहूँगा। आपके समीप ही महर्षि वाल्मीकिका बहुत बड़ा आश्रम है।' यों कहकर लक्ष्मणने उनकी परिक्रमा की और दुःखमग्न हो आँसू बहाते हुए वे महाराज श्रीरामके पास चल दिये। जानकीजीने जाते हुए देवरकी ओर विस्मित दृष्टिसे

देखा। वे सोचने लगीं—'महाभाग लक्ष्मण मेरे देवर हैं, शायद परिहास करते हों; भला, श्रीरघुनाथजी अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मुझ पापरहित पत्नीको कैसे त्याग सकते हैं।' यही विचार करती हुई वे निर्निमेष नेत्रोंसे उनकी ओर देखती रहीं; किन्तु जब वे गङ्गाके उस पार चले गये, तब उन्हें सर्वथा विश्वास हो गया कि सचमुच ही मैं त्याग दी गयी। अब मेरे प्राण बचेंगे या नहीं, इस संशयमें पड़कर वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं और तत्काल उन्हें मूर्च्छाने आ दबाया।

उस समय हंस अपने पंखोंसे जल लाकर सीताके शरीर-पर सब ओरसे छिड़कने लगे। फूलोंकी सुगन्ध लिये मन्द-मन्द वायु चलने लगी तथा हाथी भी अपनी सूँड़ोंमें जल लिये सब

ओरसे वहाँ आकर खड़े हो गये, मानो धूलिसे भरे हुए सीताके शरीरको धोनेके लिये आये हों। इसी समय सती सीता होशमें आयीं और बारंबार राम-रामकी रट लगाती हुई बड़े दुःखसे विलाप करने लगीं—'हा राम ! हा दीनबन्धो !! हा करुणानिधे !!! बिना अपराधके ही क्यों मुझे इस वनमें त्याग रहे हो।' इस प्रकारकी बहुत-सी बातें कहती हुई वे बार-बार विलाप करती और इधर-उधर देखती हुई रह-रहकर मूर्च्छित हो जाती थीं। उस समय भगवान् वाल्मीकि शिष्योंके साथ वनमें गये थे। वहाँ उन्हें करुणाजनक स्वरमें विलाप और रोदन सुनायी पड़ा। वे शिष्योंसे बोले—'वनके भीतर जाकर देखो तो सही, इस महाघोर जंगलमें कौन रो रहा है ? उसका स्वर दुःखसे पूर्ण जान पड़ता है।' मुनिके भेजनेसे वे उस स्थानपर गये, जहाँ जानकी राम-रामकी पुकार मचाती हुई आँसुओंमें डूब रही थीं। उन्हें देखकर वे शिष्य उत्कण्ठावश वाल्मीकि मुनिके पास लौट गये। उनकी बातें सुनकर मुनि स्वयं ही उस स्थानपर गये। पतिव्रता जानकीने देखा एक महर्षि आ रहे हैं, जो तपस्याके पुञ्ज जान पड़ते हैं। उन्हें देख सीताजीने हाथ जोड़कर कहा—'व्रतके सागर और वेदोंके साक्षात् स्वरूप महर्षिको नमस्कार है।' उनके

यों कहनेपर महर्षिने आशीर्वादके द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा—'बेटी ! तुम अपने पतिके साथ चिरकालतक जीवित रहो। तुम्हें दो सुन्दर पुत्र प्राप्त हों। बताओ, तुम कौन हो ? इस भयङ्कर वनमें क्यों आयी हो तथा क्यों ऐसी हो रही हो ? सब कुछ बताओ, जिससे मैं तुम्हारे दुःखका कारण जान सकूँ।' तब श्रीरघुनाथजीकी पत्नी सीताजी एक दीर्घ निःश्वास ले काँपती हुई करुणामयी वाणीमें बोलीं—'महर्षे ! मुझे श्रीरघुनाथजीकी सेविका समझिये। मैं बिना अपराधके ही त्याग दी गयी हूँ। इसका कारण क्या है, यह मैं बिल्कुल नहीं जानती। श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मण मुझे यहाँ छोड़ गये हैं।'

वाल्मीकिजी बोले—विदेहकुमारी ! मुझे अपने पिताका गुरु समझो, मेरा नाम वाल्मीकि है। अब तुम दुःख न करो,

मेरे आश्रमपर आओ। पतिव्रते! तुम यही जानो कि दूसरे स्थानपर बना हुआ मेरे पिताका ही यह घर है।

सती सीताका मुख शोकके आँसुओंसे भीगा था। मुनिका सान्त्वनापूर्ण वचन सुनकर उन्हें कुछ सुख मिला। उनके नेत्रोंमें इस समय भी दुःखके आँसू छलक रहे थे। वाल्मीकिजी उन्हें आश्वासन देकर तापसी स्त्रियोंसे भरे हुए अपने पवित्र आश्रमपर ले गये। सीता महर्षिके पीछे-पीछे गयीं और वे मुनिसमुदायसे भरे हुए अपने आश्रमपर पहुँचकर तापसियोंसे बोले—'अपने आश्रमपर जानकी आयी है [उनका

स्वागत करो]।' महामना सीताने सब तपस्विनियोंको प्रणाम किया और उन्होंने भी प्रसन्न होकर उन्हें छातीसे लगाया। तपोनिधि वाल्मीकिने अपने शिष्योंसे कहा—'तुम जानकीके लिये एक सुन्दर पर्णशाला तैयार करो।' आज्ञा पाकर उन्होंने पत्तों और लकड़ियोंके द्वारा एक सुन्दर कुटी निर्माण की। पतिव्रता जानकी उसीमें निवास करने लगीं। वे वाल्मीकि मुनिकी टहल बजाती हुई फलाहार करके रहती थीं तथा मन और वाणीसे निरन्तर राम मन्त्रका जप करती हुई दिन व्यतीत करती थीं। समय आनेपर उन्होंने दो सुन्दर पुत्रोंको जन्म दिया; जो आकृतिमें श्रीरामचन्द्रजीके समान तथा

अश्विनीकुमारोंकी भाँति मनोहर थे। जानकीके पुत्र होनेका समाचार सुनकर मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे, अतः उन बालकोंके जातकर्म आदि संस्कार उन्होंने ही सम्पन्न किये। महर्षि वाल्मीकिने उन बालकोंके संस्कार-सम्बन्धी सभी कर्म कुशों और उनके लवों (टुकड़ों) द्वारा ही किये थे; अतः उन्हींके नामपर उन दोनोंका नाम क्रमशः कुश और लव रखा। जिस समय उन शुद्धात्मा महर्षिने पुत्रोंका मङ्गल-कार्य सम्पन्न किया, उस समय सीताजीका हृदय आनन्दसे भर गया। उनके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। उसी दिन लवणासुरको मारकर शत्रुघ्नजी भी अपने थोड़े-से सैनिकोंके साथ वाल्मीकि मुनिके सुन्दर आश्रमपर रात्रिमें आये थे। उस समय वाल्मीकि-जीने उन्हें सिखा दिया था कि 'तुम श्रीरघुनाथजीको जानकीके पुत्र होनेकी बात न बताना; मैं ही उनके सामने सारा वृत्तान्त कहूँगा।'

जानकीके वे दोनों पुत्र वहाँ बढ़ने लगे। उनका रूप

बड़ा ही मनोहर था। सीता उन्हें कन्द, मूल और फल खिलाकर पुष्ट करने लगीं। वे दोनों परम सुन्दर और अपनी रूप-माधुरीसे उन्मत्त बना देनेवाले थे। शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके चन्द्रमाकी भाँति मनको मोहनेवाले दोनों कुमारोंका समयानुसार उपनयन-संस्कार हुआ, इससे उनकी मनोहरता और भी बढ़ गयी। महर्षि वाल्मीकिने उपनयनके पश्चात् उन्हें अङ्गोंसहित वेद और रहस्योंसहित धनुर्वेदका अध्ययन कराया। उसके बाद स्वरचित रामायण-काव्य भी पढ़ाया। उन्होंने ही उन बालकोंको सुवर्णभूषित धनुष प्रदान किये, जो अभेद्य और श्रेष्ठ थे। जिनकी प्रत्यञ्चा बहुत ही उत्तम थी तथा जो शत्रु-समुदायके लिये अत्यन्त भयंकर थे। धनुषके साथ ही बाणोंसे भरे दो अक्षय तरकश, दो खड्ग तथा बहुत-सी अभेद्य ढालें भी उन्होंने जानकीकुमारोंको अर्पण किये। धनुर्वेदके पारगामी होकर वे दोनों बालक धनुष धारण किये बड़ी प्रसन्नताके साथ आश्रममें विचरा करते थे। उस समय सुन्दर अश्विनीकुमारोंकी भाँति उनकी बड़ी शोभा होती थी। जानकीजी ढाल-तलवार धारण किये अपने दोनों सुन्दर कुमारोंको देख-देखकर बहुत प्रसन्न रहा करती थीं। वात्स्यायनजी! यह मैंने

आपको जानकीके पुत्र-जन्मका प्रसङ्ग सुनाया है। अब अश्वकी रक्षा करनेवाले वीरोंकी भुजाओंके काटे जानेके पश्चात् जो घटना हुई, उसका वर्णन सुनिये।

युद्धमें लवके द्वारा सेनाका संहार, कालजित्‌का वध तथा पुष्कल और हनुमान्‌जीका मूर्च्छित होना

शेषजी कहते हैं—मुनिवर! अपने वीरोंकी भुजाएँ कटी देख शत्रुघ्नजीको बड़ा क्रोध हुआ। वे रोषके मारे दाँतोंसे ओठ चबाते हुए बोले—'योद्धाओ! किस वीरने तुम्हारी भुजाएँ काटी हैं! आज मैं भी उसकी बाँहें काट डालूँगा; देवताओंद्वारा सुरक्षित होनेपर भी वह छुटकारा नहीं पा सकता।' शत्रुघ्नजीके इस प्रकार कहनेपर वे योद्धा विस्मित और अत्यन्त दुखी होकर बोले—'राजन्! एक बालकने, जिसका स्वरूप श्रीरामचन्द्रजीसे बिल्कुल मिलता-जुलता है, हमारी यह दुर्दशा की है।' बालकने घोड़ेको पकड़ रखा है, यह सुनकर शत्रुघ्नजीकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उन्होंने युद्धके लिये उत्सुक होकर कालजित् नामक सेनाध्यक्षको आदेश दिया—'सेनापते! मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण सेनाका व्यूह बना लो। इस समय अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी शत्रुपर चढ़ाई करनी है। यह घोड़ा पकड़नेवाला वीर कोई साधारण बालक नहीं है। निश्चय ही उसके रूपमें साक्षात् इन्द्र होंगे।' आज्ञा पाकर सेनापतिने चतुरङ्गिणी सेनाको दुर्भेद्य व्यूहके रूपमें सुसज्जित किया। सेनाको सजी देख शत्रुघ्नजीने उसे उस स्थानपर कूच करनेकी आज्ञा दी, जहाँ अश्वका अपहरण

करनेवाला बालक खड़ा था । तब वह चतुरङ्गिणी सेना आगे बढ़ी। सेनापतिने श्रीरामके समान रूपवाले उस बालकको देखा और कहा—'कुमार! यह पराक्रमसे शोभा पानेवाले श्रीरामचन्द्रजीका श्रेष्ठ अश्व है, इसे छोड़ दो। तुम्हारी आकृति श्रीरामचन्द्रजीसे बहुत मिलती-जुलती है, इसलिये तुम्हें देखकर मेरे हृदयमे दया आती है। यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारे जीवनकी रक्षा नहीं हो सकती ।'

शत्रुघ्नजीके योद्धाकी यह बात सुनकर कुमार लव किञ्चित् मुसकराये और कुछ रोषमें आकर यह अद्भुत वचन बोले—"जाओ, तुम्हे छोड़ देता हूँ, श्रीरामचन्द्रजीसे इस घोड़ेके पकड़े जानेका समाचार कहो। वीर ! तुम्हारे इस नीतियुक्त वचनको सुनकर मैं तुमसे भय नहीं खाता । तुम्हारे-जैसे करोड़ों योद्धा आ जायँ, तो भी मेरी दृष्टिमें यहाँ उनकी कोई गिनती नहीं है। मैं अपनी माताके चरणोंकी कृपासे उन सबको रूईकी ढेरीके तुल्य मानता हूँ, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुम्हारी माताने जो तुम्हारा नाम 'कालजित्' रखा है, उसे सफल बनाओ। मैं तुम्हारा काल हूँ, मुझे जीत लेनेपर ही तुम अपना नाम सार्थक कर सकोगे।"

कालजित्ने कहा—बालक ! तुम्हारा जन्म किस वंशमें हुआ है ? तुम किस नामसे प्रसिद्ध हो ? मुझे तुम्हारे कुल, शील, नाम और अवस्थाका कुछ भी पता नहीं है। इसके सिवा, मैं रथपर बैठा हूँ और तुम पैदल हो। ऐसी दशामें मैं तुम्हें अधर्मपूर्वक कैसे परास्त करूँ ?

लव बोले—कुल, शील, नाम और अवस्थासे क्या लेना है ? मैं लव हूँ और लव मात्रमें ही समस्त शत्रु-योद्धाओंको जीत लूँगा [मुझे पैदल जानकर संकोच मत करो], लो, तुम्हें भी अभी पैदल किये देता हूँ ।

ऐसा कहकर बलवान् लवने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी तथा पहले अपने गुरु वाल्मीकिका, फिर माता जानकीका स्मरण करके तीखे बाणोंको छोड़ना आरम्भ किया, जो तत्काल ही शत्रुके प्राण लेनेवाले थे। तब कालजित्ने भी कुपित होकर अपना धनुष चढ़ाया तथा अपने युद्ध-कौशलका परिचय देते हुए बड़े वेगसे लवपर बाणोंका प्रहार किया। किन्तु कुशके छोटे भाईने क्षणभरमें उन सभी बाणोंको काट-कर एक-एकके सौ-सौ टुकड़े कर दिये और आठ बाण मारकर सेनापतिको भी रथहीन कर दिया। रथके नष्ट हो जानेपर वे अपने सैनिकोंद्वारा लाये हुए हाथीपर सवार हुए। वह हाथी बड़ा ही वेगशाली और मदसे उन्मत्त था। उसके मस्तकसे मदकी सात धाराएँ फूटकर बह रही थीं। कालजित्को हाथीपर बैठे देख सम्पूर्ण शत्रुओंपर विजय पानेवाले वीर लवने हँसकर उन्हे दस बाणोंसे बींध डाला। लवका पराक्रम देख कालजित्के मनमें बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने एक तीक्ष्ण एवं भयङ्कर परिघका प्रहार किया, जो शत्रुके प्राणोंका अपहरण करनेवाला था। किन्तु लवने तुरंत ही उसे काट गिराया। फिर उसी क्षण तलवारसे हाथीकी सूँड़ काट डाली और उसके दाँतोंपर पैर रखकर वे तुरंत उसके मस्तकपर चढ़ गये। वहाँ सेनापतिके मुकुटके सौ और कवचके हजार टुकड़े करके उनके मस्तकका बाल खींचकर उन्हें धरतीपर गिरा दिया। फिर तो सेनापतिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने लवका वध करनेके लिये तलवार हाथमें ली। उन्हें तलवार लेकर आते देख लवने उनकी दाहिनी भुजाको बीचसे काट डाला। कटा हुआ हाथ तलवारसहित पृथ्वीपर जा पड़ा।

खड्गधारी हाथको कटा देख सेनापतिने क्रोधमे भरकर बायें हाथसे लवपर गदा मारनेकी तैयारी की। इतनेहीमें लवने

अपने तीखे बाणोंसे उनकी उस बाँहको भी भुजबंदसहित काट गिराया। तदनन्तर, कालाग्निके समान प्रज्वलित खड्ग हाथमें लेकर उन्होंने सेनापतिके मुकुटमण्डित मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया।

सेनाध्यक्षके मारे जानेपर सेनामें महान् हाहाकार मचा। सारे सैनिक क्रोधमें भरकर लवका वध करनेके लिये क्षणभरमें आगे बढ़ आये, परन्तु लवने अपने बाणोंकी मारसे उन सबको पीछे खदेड़ दिया। कितने ही छिन्न-भिन्न होकर वहीं ढेर हो गये और कितने ही रणभूमि छोड़कर भाग गये। इस प्रकार सम्पूर्ण योद्धाओंको पीछे हटाकर लव बड़ी प्रसन्नताके साथ सेनामें जा घुसे। किन्हींकी बाँहें, किन्हींके पैर, किन्हींके कान, किन्हींकी नाक तथा किन्हींके कवच और कुण्डल कट गये। इस प्रकार सेनापतिके मारे जानेपर सैनिकोंका भयङ्कर संहार हुआ। युद्धमे आये हुए प्रायः सभी वीर मारे गये, कोई भी जीवित न बचा। इस प्रकार लवने शत्रु-समुदायको परास्त करके युद्धमें विजय पायी तथा दूसरे योद्धाओंके आनेकी आशङ्कासे वे खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे। कोई-कोई योद्धा भाग्यवश उस युद्धसे बच गये। उन्होंने ही शत्रुघ्नके पास जाकर रण-भूमिका सारा समाचार सुनाया। बालकके हाथसे कालजित्की मृत्यु तथा उसके विचित्र रण-कौशलका वृत्तान्त सुनकर शत्रुघ्नको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'वीरो! तुमलोग छल तो नहीं कर रहे हो? तुम्हारा चित्त विकल तो नहीं है? कालजित्का मरण कैसे हुआ? वे तो यमराजके लिये भी दुर्धर्ष थे? उन्हें एक बालक कैसे परास्त कर सकता है?' शत्रुघ्नकी बात सुनकर खूनसे लथपथ हुए उन योद्धाओंने कहा—'राजन्! हम छल या खेल नहीं कर रहे हैं; आप विश्वास कीजिये। कालजित्की मृत्यु सत्य है और वह लवके हाथसे ही हुई है। उसका युद्धकौशल अनुपम है। उस बालकने सारी सेनाको मथ डाला। इसके बाद अब जो कुछ करना हो, खूब सोच-विचारकर करें। जिन्हें युद्धके लिये भेजना हो, वे सभी श्रेष्ठ पुरुष होने चाहिये।' उन वीरोंका कथन सुनकर शत्रुघ्नने श्रेष्ठ बुद्धिवाले मन्त्री सुमतिसे युद्धके विषयमें पूछा—'मन्त्रिवर! क्या तुम जानते हो कि किस बालकने मेरे अश्वका अपहरण किया है? उसने मेरी सारी सेनाका, जो समुद्रके समान विशाल थी, विनाश कर डाला है।'
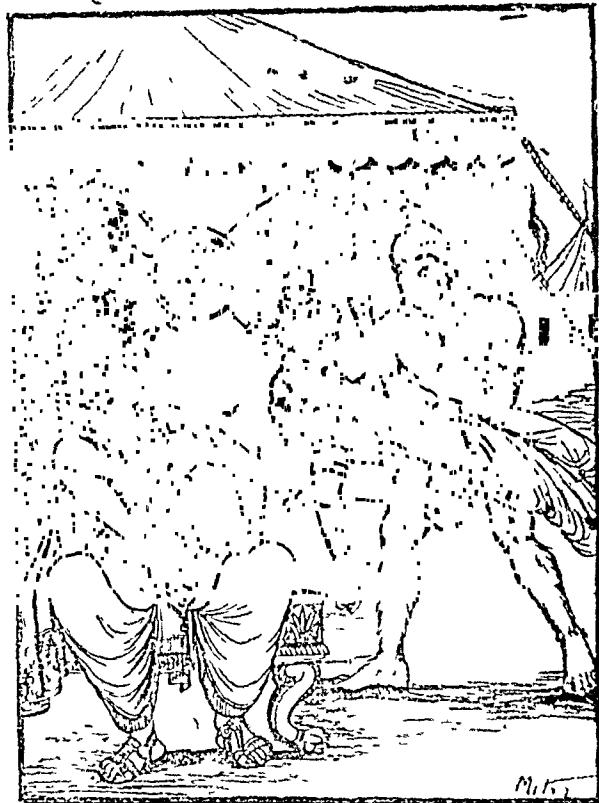
सुमतिने कहा—स्वामिन्! यह मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिका महान् आश्रम है, क्षत्रियोंका यहाँ निवास नहीं है। सम्भव है इन्द्र हों और अमर्षमें आकर उन्होंने घोड़ेका अपहरण किया हो। अथवा भगवान् शङ्कर ही बालक-वेषमें आये हों अन्यथा दूसरा कौन ऐसा है, जो तुम्हारे अश्वका अपहरण कर सके। मेरा तो ऐसा विचार है कि अब तुम्हीं वीर योद्धाओं तथा सम्पूर्ण राजाओंसे घिरे हुए वहाँ जाओ और विशाल सेना भी अपने साथ ले लो। तुम शत्रुका उच्छेद करनेवाले हो, अतः वहाँ जाकर उस वीरको जीते-जी बाँध लो। मैं उसे ले जाकर कौतुक देखनेकी इच्छा रखनेवाले श्रीरघुनाथजीको दिखाऊँगा।

मन्त्रीका यह वचन सुनकर शत्रुघ्नने सम्पूर्ण वीरोंको आज्ञा दी—'तुमलोग भारी सेनाके साथ चलो, मैं भी पीछेसे आता हूँ।' आज्ञा पाकर सैनिकोंने कूच किया। वीरोंसे भरी हुई उस विशाल सेनाको आते देख लव सिंहके समान उठकर खड़े हो गये। उन्होंने समस्त योद्धाओंको मृगोंके समान तुच्छ समझा। वे सैनिक उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये।

उस समय उन्होंने घेरा डालनेवाले समस्त सैनिकोंको प्रज्वलित अग्निकी भाँति भस्म करना आरम्भ किया। किन्हींको तलवारके घाट उतारा, किन्हींको बाणोंसे मार परलोक पहुँचाया तथा किन्हींको प्रास, कुन्त, पट्टिश और परिघ आदि शस्त्रोंका निशाना बनाया। इस प्रकार महात्मा लवने सभी घेरोंको तोड़ डाला। सातों घेरोंसे मुक्त होनेपर कुशके छोटे भाई लव शरद् ऋतुमें मेघोंके आवरणसे उन्मुक्त हुए चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाने लगे। उनके बाणोंसे पीड़ित होकर अनेकों वीर धराशायी हो गये। सारी सेना भाग चली। यह देख वीरवर पुष्कल युद्धके लिये आगे बढ़े। उनके नेत्र क्रोधसे भरे थे और वे 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहकर लवको ललकार रहे थे। निकट आनेपर पुष्कलने लवसे कहा—'वीर! मैं तुम्हें उत्तम घोड़ोंसे सुशोभित एक रथ प्रदान करता हूँ, उसपर बैठ जाओ। इस समय तुम पैदल हो; ऐसी दशामें मैं तुम्हारे साथ युद्ध कैसे कर सकता हूँ; इसलिये पहले रथपर बैठो, फिर तुम्हारे साथ लोहा लूँगा।'

यह सुनकर लवने पुष्कलसे कहा—'वीर! यदि मैं तुम्हारे दिये हुए रथपर बैठकर युद्ध करूँगा, तो मुझे पाप ही लगेगा और विजय मिलनेमें भी सन्देह रहेगा। हमलोग दान लेनेवाले ब्राह्मण नहीं हैं, अपि तु स्वयं ही प्रतिदिन दान आदि शुभकर्म करनेवाले क्षत्रिय हैं [तुम मेरे पैदल होनेकी चिन्ता न करो]। मैं अभी क्रोधमें भरकर तुम्हारा रथ तोड़ डालता हूँ, फिर तुम भी पैदल ही हो जाओगे। उसके बाद युद्ध करना।' लवका यह धर्म और धैर्यसे युक्त वचन सुनकर पुष्कलका चित्त बहुत देरतक विस्मयमें पड़ा रहा। तत्पश्चात् उन्होंने धनुष चढ़ाया। उन्हें धनुष उठाते देख लवने कुपित होकर बाण मारा और पुष्कलके हाथका धनुष काट डाला। फिर जब वे दूसरे धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाने लगे तबतक उस उद्धत एवं बलवान् वीरने हँसते-हँसते उनके रथको भी तोड़ दिया। महात्मा लवके द्वारा अपने धनुषको छिन्न-भिन्न हुआ देख पुष्कल क्रोधमें भर गये और उस महाबली वीरके साथ बड़े वेगसे युद्ध करने लगे। लवने लवमात्रमें तरकशसे तीर निकाला, जो विषैले साँपकी भाँति जहरीला था। उसने वह तेजस्वी बाण क्रोधपूर्वक छोड़ा। धनुषसे छूटते ही वह पुष्कलकी छातीमें धँस गया और वह महावीरशिरोमणि मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। पुष्कलको मूर्च्छित होकर गिरा देख पवनकुमारने उठा लिया और श्रीरघुनाथजीके भ्राता शत्रुघ्नको अर्पित कर दिया।

उन्हें अचेत देख शत्रुघ्नका चित्त शोकसे विह्वल हो गया। उन्होंने क्रोधमें भरकर हनुमान्‌जीको लवका वध करनेकी आज्ञा दी। हनुमान्‌जी भी कुपित होकर महाबली लवको युद्धमें परास्त करनेके लिये बड़े वेगसे गये और उनके मस्तकको लक्ष्य करके उन्होंने वृक्षका प्रहार किया। वृक्षको अपने ऊपर आते देख लवने अपने बाणोंसे उसके सौ टुकड़े कर डाले। तब हनुमान्‌जीने बड़ी-बड़ी शिलाएँ उखाड़कर बड़े वेगसे लवके मस्तकपर फेंकीं। शिलाओंका आघात पाकर उन्होंने अपना धनुष ऊपरको उठाया और बाणोंकी वर्षासे शिलाओंको चूर्ण कर दिया। फिर तो हनुमान्‌जीके क्रोधकी सीमा न रही; उन्होंने बलवान् लवको पूँछमें लपेट लिया। यह देख लवने अपनी माता जानकीका स्मरण किया और हनुमान्‌जीकी पूँछपर मुक्केसे मारा। इससे उनको बड़ी व्यथा हुई और उन्होंने लवको बन्धनसे मुक्त कर दिया। पूँछसे छूटनेपर उस बलवान् वीरने हनुमान्‌जीपर बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी; जिससे उनके समस्त शरीरमें बड़ी पीड़ा होने लगी। उन्होंने लवकी बाणवर्षाको अपने लिये अत्यन्त दुःसह समझा और समस्त वीरोंके देखते-देखते वे मूर्च्छित होकर रणभूमिमें गिर पड़े। फिर लव अन्य सब राजाओंको मारने लगे। वे बाण छोड़नेमें बड़े निपुण थे।

शत्रुघ्नके बाणसे लवकी मूर्च्छा, कुशका रणक्षेत्रमें आना, कुश और लवकी विजय तथा सीताके प्रभावसे शत्रुघ्न आदि एवं उनके सैनिकोंकी जीवन-रक्षा

शेषजी कहते हैं—मुने ! वायुनन्दन हनुमान्‌जीके मूर्च्छित होनेका समाचार सुनकर शत्रुघ्नको बड़ा शोक हुआ। अब वे स्वयं सुवर्णमय रथपर विराजमान हुए और श्रेष्ठ वीरोंको साथ ले युद्धके लिये उस स्थानपर गये, जहाँ विचित्र रणकुशल वीरवर लव मौजूद थे। उन्हें देखकर शत्रुघ्नने मन-ही-मन विचार किया कि 'श्रीरामचन्द्रजीके सदृश स्वरूप धारण करनेवाला यह बालक कौन है ? इसका नीलकमल-दलके समान श्याम शरीर कितना मनोहर है ! हो न हो, यह विदेहकुमारी सीताका ही पुत्र है।' भीतर-ही-भीतर ऐसा सोचकर वे बालकसे बोले—'वत्स ! तुम कौन हो, जो रणभूमिमें हमारे योद्धाओंको गिरा रहे हो ? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं ? तुम बड़े सौभाग्यशाली हो; क्योंकि इस युद्धमें तुमने विजय पायी है। महाबली वीर ! तुम्हारा लोक-प्रसिद्ध नाम क्या है ? मैं जानना चाहता हूँ।' शत्रुघ्नके इस प्रकार पूछनेपर वीर बालक लवने उत्तर दिया—'वीरवर ! मेरे नामसे, पितासे, कुलसे तथा अवस्थासे तुम्हें क्या काम है ? यदि तुम स्वयं बलवान् हो तो समरमें मेरे साथ युद्ध करो, यदि शक्ति हो तो बलपूर्वक अपना घोड़ा छुड़ा ले जाओ।' ऐसा कहकर उस उद्भट वीरने अनेकों बाणोंका सन्धान करके शत्रुघ्नकी छाती, मस्तक और भुजाओंपर प्रहार किया। तब राजा शत्रुघ्नने भी अत्यन्त कोपमें भरकर अपना धनुष चढ़ाया और बालकको त्रास-सा देते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें टङ्कार की। बलवानोंमें श्रेष्ठ तो वे थे ही, असंख्य बाणोंकी वर्षा करने लगे। परन्तु बालक लवने उनके सभी सायकोंको बलपूर्वक काट दिया। तत्पश्चात् लवके छोड़े हुए करोड़ों बाणोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी।

इतने बाणोंका प्रहार देखकर शत्रुघ्न दंग रह गये। फिर उन्होंने लवके लाखों बाणोंको काट गिराया। अपने समस्त सायकोंको कटा देख कुशके छोटे भाई लवने राजा शत्रुघ्नके धनुषको वेगपूर्वक काट डाला। वे दूसरा धनुष लेकर ज्यों ही बाण छोड़नेको उद्यत होते हैं, त्यों ही लवने तीक्ष्ण सायकोंसे उनके रथको भी खण्डित कर दिया। रथ, घोड़े, सारथि और धनुषके कट जानेपर वे दूसरे रथपर सवार हुए और बलपूर्वक लवका सामना करनेके लिये चले। उस समय शत्रुघ्नने अत्यन्त कोपमें भरकर लवके ऊपर दस तीखे बाण छोड़े, जो प्राणोंका संहार करनेवाले थे। परन्तु लवने तीखी गाँठवाले बाणोंसे उनके टुकड़े-टुकड़े करके एक अर्धचन्द्राकार बाणसे शत्रुघ्नकी छातीमें प्रहार किया, उससे उनकी छातीमें गहरी चोट पहुँची और उन्हें बड़ी भयङ्कर पीड़ा हुई। वे हाथमें धनुष लिये ही रथकी बैठकमें गिर पड़े।
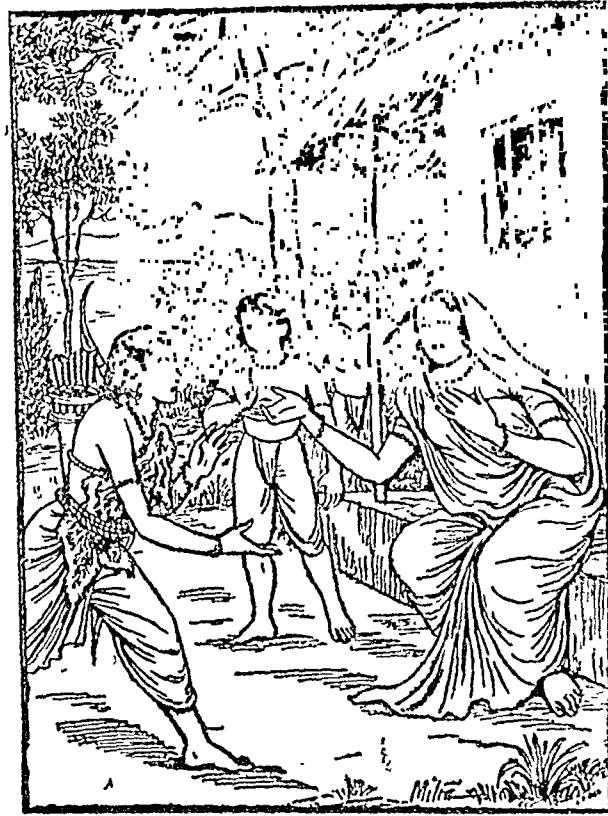
शत्रुघ्नको मूर्च्छित देख सुरथ आदि राजा युद्धमें विजय-प्राप्तिके लिये उद्यत हो लवपर टूट पड़े। किसीने क्षुरप्र और मुशल चलाये तो कोई अत्यन्त भयानक बाणोंद्वारा ही प्रहार करने लगे। किसीने प्रास, किसीने कुन्त और किसीने फरसोंसे ही काम लिया। सारांश यह कि राजालोग सब ओरसे लवपर प्रहार करने लगे। वीरशिरोमणि लवने देखा कि ये क्षत्रिय अधर्मपूर्वक युद्ध करनेको तैयार हैं तो उन्होंने दस-दस बाणोंसे सबको घायल कर दिया। लवकी बाणवर्षासे आहत हो-कर कितने ही क्रोधी राजा रणभूमिसे पलायन कर गये और कितने ही युद्धक्षेत्रमें ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। इतनेहीमें राजा शत्रुघ्नकी मूर्च्छा दूर हुई और वे महावीर लवसे बलपूर्वक युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े तथा सामने आकर बोले—'वीर ! तुम धन्य हो ! देखनेमें ही बालक-जैसे जान पड़ते हो, [वास्तवमें तुम्हारी वीरता अद्भुत है।] अब मेरा पराक्रम देखो; मैं अभी तुम्हें युद्धमें गिराता हूँ।' ऐसा कहकर शत्रुघ्नने एक बाण हाथमें लिया, जिसके द्वारा लवणासुरका वध हुआ था तथा जो यमराजके मुखकी भाँति भयङ्कर था। उस तीखे बाणको धनुषपर चढ़ाकर शत्रुघ्नने लवकी छातीको विदीर्ण करनेका विचार किया। वह बाण धनुषसे छूटते ही दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ

प्रज्वलित हो उठा। उसे देखकर लवको अपने बलिष्ठ भ्राता कुशकी याद आयी, जो वैरियोंको मार गिरानेवाले थे। वे सोचने लगे, यदि इस समय मेरे बलवान् भाई वीरवर कुश होते तो मुझे शत्रुघ्नके अधीन न होना पड़ता तथा मुझपर यह दारुण भय न आता। इस प्रकार विचारते हुए महात्मा लवकी छातीमें वह महान् बाण आ लगा, जो कालाग्निके समान भयङ्कर था। उसकी चोट खाकर वीर लव मूर्च्छित हो गये।

बलवान् वैरियोंको विदीर्ण करनेवाले लवको मूर्च्छित देख महाबली शत्रुघ्नने युद्धमें विजय प्राप्त की। वे शिरस्त्राण आदिसे अलङ्कृत बालक लवको, जो स्वरूपसे श्रीरामचन्द्रजीकी समानता करता था, रथपर बिठाकर वहाँसे जानेका विचार करने लगे। अपने मित्रको शत्रुके चंगुलमें फँसा देख आश्रमवासी ब्राह्मण-बालकोंको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने तुरंत जाकर लवकी माता सीतासे सब समाचार कह सुनाया—'मा जानकी! तुम्हारे पुत्र लवने किसी बड़े राजा-महाराजाके घोड़ेको जबरदस्ती पकड़ लिया है। राजाके पास सेना भी है तथा उनका मान-सम्मान भी बहुत है। घोड़ा पकड़नेके बाद लवका राजाकी सेनाके साथ भयङ्कर युद्ध हुआ। किन्तु सीता मैया! तुम्हारे वीर पुत्रने सब योद्धाओंको मार गिराया। उसके बाद वे लोग फिर लड़ने आये। परन्तु उसमें भी तुम्हारे सुन्दर पुत्रकी ही जीत हुई। उसने राजाको बेहोश कर दिया और युद्धमें विजय पायी। तदनन्तर, कुछ ही देरके बाद उस भयङ्कर राजाकी मूर्च्छा दूर हो गयी और उसने क्रोधमें भरकर तुम्हारे पुत्रको रणभूमिमें मूर्च्छित करके गिरा दिया है।'

सीता बोलीं—हाय! राजा बड़ा निर्दयी है, वह बालकके साथ क्यों युद्ध करता है? अधर्मके कारण उसकी बुद्धि दूषित हो गयी है, तभी उसने मेरे बच्चेको धराशायी किया है। बालको! बताओ, उस राजाने मेरे पुत्रको कैसे युद्धमें गिराया है तथा अब वह कहाँ जायगा?

पतिव्रता जानकी बालकोंसे इस प्रकारकी बातें कह रही थीं, इतनेहीमें वीरवर कुश भी महर्षियोंके साथ आश्रमपर आ पहुँचे। उन्होंने देखा, माता जानकी अत्यन्त व्याकुल हैं तथा उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं। तब वे अपनी जननीसे बोले—'माँ! मुझ पुत्रके रहते हुए तुमपर कैसा दुःख आ

पड़ा? शत्रुओंका मर्दन करनेवाला मेरा भाई लव कहाँ है? वह बलवान् वीर दिखायी क्यों नहीं देता? कहाँ घूमने चला गया? मेरी माँ! तुम रोती क्यों हो? बताओ न, लव कहाँ है?'

जानकीने कहा—बेटा! किसी राजाने लवको पकड़ लिया है। वह अपने घोड़ेकी रक्षाके लिये यहाँ आया था। सुना है, मेरे बच्चेने उसके यज्ञसम्बन्धी अश्वको पकड़कर बाँध लिया था। लव बलवान् है, उसे अकेले ही अनेकों शत्रुओंसे लड़ना पड़ा है। फिर भी उसने बहुत-से अश्व-रक्षकोंको परास्त किया है। परन्तु अन्तमें उस राजाने लवको युद्धमें मूर्च्छित करके बाँध लिया है, यह बात इन बालकोंने बतायी है, जो उसके साथ ही गये थे। यही सुनकर मुझे दुःख हुआ है। वत्स! तुम समयपर आ गये। जाओ और उस श्रेष्ठ राजाके हाथसे लवको बलपूर्वक छुड़ा लाओ।

कुश बोले—माँ! तुम जान लो कि लव अब उस राजाके बन्धनसे मुक्त हो गया। मैं अभी जाकर राजाको सेना और सवारियोंसहित अपने बाणोंका निशाना बनाता हूँ। यदि कोई अमर देवता या साक्षात् रुद्र आ गये हों तो भी अपने तीखे बाणोंकी मारसे उन्हें व्यथित करके मैं लवको छुड़ा लूँगा। माता! तुम रोओ मत; वीर पुरुषोंका संग्राममें

मूर्च्छित होना उनके यशका कारण होता है। युद्धसे भागना ही उनके लिये कलङ्ककी बात है।

शेषजी कहते हैं—मुने! कुशके इस वचनसे शुभ-लक्षणा सीताको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुत्रको सब प्रकारका अस्त्र-शस्त्र दिया और विजयके लिये आशीर्वाद देकर कहा—'बेटा! युद्ध-क्षेत्रमें जाकर मूर्च्छित हुए लवको बन्धनसे छुड़ाओ।' माताकी यह आज्ञा पाकर कुशने कवच और कुण्डल धारण किये तथा जननीके चरणोंमें प्रणाम करके बड़े वेगसे रणकी ओर प्रस्थान किया। वे वेग-पूर्वक युद्धके लिये संग्रामभूमिमें उपस्थित हुए, वहाँ पहुँचते ही उनकी दृष्टि लवके ऊपर पड़ी; जिन्हें शत्रुओंने मूर्च्छित करके गिराया था। [वे रथपर बँधे पड़े थे और उनकी मूर्छा दूर हो चुकी थी] अपने महाबली भ्राता कुशको आया देख लव युद्धभूमिमें चमक उठे; मानो वायुका सहयोग पाकर अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो। वे रथसे अपनेको छुड़ाकर युद्धके लिये निकल पड़े। फिर तो कुशने रणभूमिमें खड़े हुए समस्त वीरोंको पूर्व दिशाकी ओरसे मारना आरम्भ किया और लवने कोपमें भरकर सबको पश्चिम ओरसे पीटना

शुरू किया। एक ओर कुशके बाणोंसे व्यथित और दूसरी ओर लवके सायकोंसे पीड़ित हो सेनाके समस्त योद्धा उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त समुद्रकी भँवरके समान क्षुब्ध हो गये। सारी सेना इधर-उधर भाग चली। सबके ऊपर आतङ्क छा रहा था। कोई भी बलवान् रणभूमिमें कहीं भी खड़ा होकर युद्ध करना नहीं चाहता था।

इसी समय शत्रुओंको ताप देनेवाले राजा शत्रुघ्न लवके समान ही प्रतीत होनेवाले वीरवर कुशसे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। समीप पहुँचकर उन्होंने पूछा—'महावीर! तुम कौन हो? आकार-प्रकारसे तो तुम अपने भाई लवके ही समान जान पड़ते हो। तुम्हारा बल भी महान् है। बताओ, तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारी माता कहाँ हैं? और पिता कौन हैं?'

कुशने कहा—राजन्! पातिव्रत्य धर्मका पालन करने-वाली केवल माता सीताने हमें जन्म दिया है। हम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकिके चरणोंका पूजन करते हुए इस वनमें रहते हैं और माताकी सेवा किया करते हैं। हम दोनोंने सब प्रकारकी विद्याओंमें प्रवीणता प्राप्त की है। मेरा नाम कुश है और इसका नाम लव। अब तुम अपना परिचय दो, कौन हो? युद्धकी श्लाघा रखनेवाले वीर जान पड़ते हो। यह सुन्दर अश्व तुमने किसलिये छोड़ रक्खा है? भूपाल! यदि वास्तवमें वीर हो तो मेरे साथ युद्ध करो। मैं अभी इस युद्ध-के मुहानेपर तुम्हारा वध कर डालूँगा।

शत्रुघ्नको जब यह मालूम हुआ कि यह श्रीरामचन्द्रजीके वीर्यसे उत्पन्न सीताका पुत्र है, तो उनके चित्तमें बड़ा विस्मय हुआ [किन्तु उस बालकने उन्हें युद्धके लिये ललकारा था; इसलिये] उन्होंने क्रोधमें भरकर धनुष उठा लिया। उन्हें धनुष लेते देख कुशको भी क्रोध हो आया और उसने अपने सुदृढ़ एवं उत्तम धनुषको खींचा। फिर तो कुश और शत्रुघ्नके धनुषसे लाखों बाण छूटने लगे। उनसे वहाँका सारा प्रदेश व्याप्त हो गया। यह एक अद्भुत बात थी। उस समय उद्भट वीर कुशने शत्रुघ्नपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया; किन्तु वह अस्त्र उन्हें पीड़ा देनेमें समर्थ न हो सका। यह देख कुशके क्रोधकी सीमा न रही। वे महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न राजा शत्रुघ्नसे बोले—'राजन्! मैं जानता हूँ, तुम संग्राममें जीतनेवाले महान् वीर हो; क्योंकि मेरे इस भयङ्कर अस्त्र—नारायणास्त्रने भी तुम्हें तनिक बाधा नहीं पहुँचायी; तथापि आज इसी समय मैं अपने तीन बाणोंसे तुम्हें गिरा-दूँगा। यदि ऐसा न करूँ तो मेरी प्रतिज्ञा सुनो, जो करोड़ों

पुण्योंसे भी दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर मोहवश उसका आदर नहीं करता [भगवद्भजन आदिके द्वारा उसको सफल नहीं बनाता] उस पुरुषको लगनेवाला पातक मुझे भी लगे। अच्छा, अब तुम सावधान हो जाओ! मैं तत्काल ही तुम्हें पृथ्वीपर गिराता हूँ।' ऐसा कहकर कुशने अपने धनुषपर एक बाण चढ़ाया, जो कालाग्निके समान भयङ्कर था। उन्होने शत्रुके अत्यन्त कठोर एवं विशाल वक्षःस्थलको लक्ष्य करके छोड़ दिया। कुशको उस बाणका सन्धान करते देख शत्रुघ्न कोपमें भर गये तथा श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके उन्होने तुरंत ही उसे काट डाला। बाणके कटनेसे कुशका क्रोध और भी भड़क उठा तथा उन्होंने धनुषपर दूसरा बाण चढ़ाया। उस बाणके द्वारा वे शत्रुघ्नकी छाती छेद डालनेका विचार कर ही रहे थे कि शत्रुघ्नने उसको भी काट गिराया। तब तो कुशको और भी क्रोध हुआ। अब उन्होंने अपनी माताके चरणोंका स्मरण करके धनुषपर तीसरा उत्तम बाण रक्खा। शत्रुघ्नने उसको भी शीघ्र ही काट डालनेके विचारसे बाण हाथमें लिया; किन्तु उसे छोड़नेके पहले ही वे कुशके बाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। शत्रुघ्नके गिरनेपर सेनामें बड़ा भारी हाहाकार मचा। उस समय अपनी भुजाओंके बलपर गर्व रखनेवाले वीरवर कुशकी विजय हुई।

शेषजी कहते हैं—मुने! राजाओंमें श्रेष्ठ सुरथने जब शत्रुघ्नको गिरा देखा तो वे अत्यन्त अद्भुत मणिमय रथपर बैठकर युद्धके लिये गये। वे महान् वीरोंके शिरोमणि थे। कुशके पास पहुँचकर उन्होंने अनेकों बाण छोड़े और समर-भूमिमें कुशको व्यथित कर दिया। तब कुशने भी दस बाण मारकर सुरथको रथहीन कर दिया और प्रत्यञ्चा चढ़ाये हुए उनके सुदृढ़ धनुषको भी वेगपूर्वक काट डाला! जब एक किसी दिव्य अस्त्रका प्रयोग करता, तो दूसरा उसके बदलेमें संहारास्त्रका उपयोग करता था और जब दूसरा किसी अस्त्रको फेंकता तो पहला भी वैसा ही अस्त्र चलाकर तुरंत उसका बदला चुकाता था। इस प्रकार उन दोनोंमें घोर घमासान युद्ध हुआ, जो वीरोंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। कुशने सोचा, अब मुझे क्या करना चाहिये! कर्तव्यका निश्चय करके उन्होंने एक तीक्ष्ण एवं भयङ्कर सायक हाथमें लिया। छूटते ही वह कालाग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। उसे आते देख सुरथने ज्यों ही काटनेका विचार किया त्यों ही वह महा-बाण तुरंत उनकी छातीमें आ लगा। सुरथ मूर्च्छित होकर रथपर गिर पड़े। यह देख सारथि उन्हें रणभूमिसे बाहर ले गया।

सुरथके गिर जानेपर कुश विजयी हुए—यह देख पवन-कुमार हनुमान्‌जीने सहसा एक विशाल शालका वृक्ष उखाड़ लिया। महान् बलवान् तो वे थे ही, कुशकी छातीको लक्ष्य बनाकर उनसे युद्ध करनेके लिये गये। निकट जाकर उन्होंने कुशकी छातीपर वह शालवृक्ष दे मारा। उसकी चोट खाकर वीर कुशने संहारास्त्र उठाया। उनका छोड़ा हुआ संहारास्त्र दुर्जय (अमोघ) था। उसे देखकर हनुमान्‌जी मन-ही-मन भक्तोंका विघ्न नष्ट करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करने लगे। इतनेहीमें उनकी छातीपर उस अस्त्रकी करारी चोट पड़ी। वह बड़ी व्यथा पहुँचानेवाला अस्त्र था। उसके लगते ही हनुमान्‌जीको मूर्च्छा आ गयी। तत्पश्चात् उस रणक्षेत्रमें कुशके चलाये हुए हजारों बाणोंकी मार खाकर सारी सेनाके पाँव उखड़ गये। समूची चतुरङ्गिणी सेना भाग चली।

उस समय वानरराज सुग्रीव उस विशाल वाहिनीके संरक्षक हुए। वे अनेकों वृक्ष उखाड़कर उद्भट वीर कुश-की ओर दौड़े। परन्तु कुशने हँसते-हँसते खेलमें ही वे सारे वृक्ष काट गिराये। तब सुग्रीवने एक भयंकर पर्वत उठाकर कुशके मस्तकको उसका निशाना बनाया। उस पर्वतको आते देख कुशने शीघ्र ही अनेकों बाणोंका प्रहार करके उसे चूर्ण कर डाला। वह पर्वत महारुद्रके शरीरमें लगाने योग्य भस्म-सा बन गया। बालकका यह महान् पराक्रम देखकर सुग्रीवको बड़ा अमर्ष हुआ और उन्होंने कुशको मारनेके लिये रोषपूर्वक एक वृक्ष हाथमें लिया। इतनेहीमें लवके बड़े भाई वीरवर कुशने वारुणास्त्रका प्रयोग किया और सुग्रीवको वरुण-पाशसे दृढ़तापूर्वक बाँध लिया। बलशाली कुशके द्वारा कोमल पाशोंसे बाँधे जानेपर सुग्रीव रणभूमि गिर पड़े। सुग्रीवको गिरा देख सभी योद्धा इधर-उधर गये। महावीरशिरोमणि कुशने विजय पायी।

लवने भी पुष्कल, अङ्गद, प्रतापाग्रय, वीरमणि तथा अन्य राजाओंको जीतकर रणमें विजय पायी। फिर दोनों भाई बड़े हर्षमें भरकर एक-दूसरेसे मिले।

लवने कहा—'भैया! आपकी कृपासे मैं युद्धरूपी समुद्रके पार हुआ। अब हमलोग इस रणकी स्मृतिके लिये कोई सुन्दर चिह्न तलाश करने चलें।' ऐसा कहकर लव अपने भाई कुशके साथ पहले राजा शत्रुघ्नके निकट गये। वहाँ कुशने उनकी सुवर्णमण्डित मनोहर मुकुटमणि ले ली। फिर वीरवर लवने पुष्कलका सुन्दर किरीट उतार लिया। इसके बाद दोनों भाइयोंने उनके बहुमूल्य भुजबंद तथा हथियारोंको भी हथिया लिया। तदनन्तर हनुमान् और सुग्रीवके पास जाकर उन दोनोंको बाँधा। फिर लवने अपने भाईसे कहा—'भैया! मैं इन दोनोंको अपने आश्रममें ले चलूँगा। वहाँ मुनियोंके बालक इनसे खेलेंगे और मेरा भी मनोरञ्जन होगा।' इस तरहकी बातें करते हुए उन दोनों महाबली वानरोंको पकड़कर वे आश्रमकी ओर चले और माताकी कुटीपर जा पहुँचे। अपने दोनों मनोहर बालकोंको आया देख माता जानकीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बड़े स्नेहके साथ उन्हें छातीसे लगाया। किन्तु जब उनके लाये हुए दोनों वानरोंपर उनकी दृष्टि पड़ी तो उन्होंने हनुमान् और वानरराज सुग्रीवको सहसा पहचान लिया। अब वे उन्हें छोड़ देनेकी आज्ञा देती हुई यह श्रेष्ठ वचन बोलीं—'पुत्रो! ये दोनों वानर बड़े वीर

और महाबलवान् हैं; इन्हें छोड़ दो। ये वीर हनुमान्जी हैं, जिन्होंने रावणकी पुरी लङ्काको भस्म किया था; तथा ये भी वानर और भालुओंके राजा सुग्रीव हैं। इन दोनोंको तुमने किसलिये पकड़ा है? अथवा क्यों इनके साथ अनादरपूर्ण बर्ताव किया है?'

पुत्रोंने कहा—माँ! एक राम नामसे प्रसिद्ध बलवान् राजा हैं, जो महाराज दशरथके पुत्र हैं। उन्होंने एक सुन्दर घोड़ा छोड़ रक्खा है, जिसके ललाटपर सोनेका पत्र बँधा है। उसमें यह लिखा है कि 'जो सच्चे क्षत्रिय हों, वे इस घोड़ेको पकड़ें; अन्यथा मेरे सामने मस्तक झुकावें।' उस राजाकी ढिठाई देखकर मैंने घोड़ेको पकड़ लिया। सारी सेनाको हमलोगोंने युद्धमें मार गिराया है। यह राजा शत्रुघ्नका मुकुट है तथा यह दूसरे वीर महात्मा पुष्कलका किरीट है।

सीताने कहा—पुत्रो! तुम दोनोंने बड़ा अन्याय किया। श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ महान् अश्व तुमने

पकड़ा, अनेकों वीरोंको मार गिराया और इन कपीश्वरोंको भी बाँध लिया—यह सब अच्छा नहीं हुआ। वीरो! तुम नहीं जानते; वह तुम्हारे पिताका ही घोड़ा है [श्रीराम तुम्हारे पिता हैं], उन्होंने अश्वमेध-यज्ञके लिये उस अश्वको छोड़ रक्खा था। इन दोनों वानर वीरोंको छोड़ दो तथा उस श्रेष्ठ अश्वको भी खोल दो।

माताकी बात सुनकर उन बलवान् बालकोंने कहा—'माँ! हमलोगोंने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार उस बलवान् राजाको परास्त किया है। क्षात्रधर्मके अनुसार युद्ध करनेवालोंको अन्यायका भागी नहीं होना पड़ता। आजके पहले जब हमलोग पढ़ रहे थे, उस समय महर्षि वाल्मीकिजीने भी हमसे ऐसा ही कहा था 'क्षात्र-धर्मके अनुसार पुत्र पितासे, भाई भाईसे और शिष्य गुरुसे भी युद्ध कर सकता है, इससे पाप नहीं होता।' तुम्हारी आज्ञासे हमलोग अभी उस उत्तम अश्वको लौटाये देते हैं; तथा इन वानरोंको भी छोड़ देंगे। तुमने जो कुछ कहा है, सबका हम पालन करेंगे।'

मातासे ऐसा कहकर वे दोनों वीर पुनः रणभूमिमें गये और वहाँ उन दोनों कपीश्वरों तथा उस अश्वमेध-योग्य अश्वको भी छोड़ आये। अपने पुत्रोंके द्वारा सेनाका मारा जाना सुनकर सीतादेवीने मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान किया और सबके साक्षी भगवान् सूर्यकी ओर देखा। वे कहने लगीं—'यदि मैं मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा केवल श्रीरघुनाथजीका ही भजन करती हूँ; दूसरे किसीको कभी मनमें भी नहीं लाती तो ये राजा शत्रुघ्न जीवित हो जायँ तथा इनकी वह विशाल सेना भी; जो मेरे पुत्रोंके द्वारा बलपूर्वक नष्ट की गयी है, मेरे सत्यके प्रभावसे जी उठे।' पतिव्रता जानकीने ज्यों ही यह वचन मुँहसे निकाला, त्यों ही वह सारी सेना, जो संग्राम-भूमिमें नष्ट हुई थी, जीवित हो गयी।

शत्रुघ्न आदिका अयोध्यामें जाकर श्रीरघुनाथजीसे मिलना तथा मन्त्री सुमतिका उन्हें यात्राका समाचार बतलाना

शेषजी कहते हैं—मुने! रणभूमिमें पड़े हुए वीर शत्रुघ्नने क्षणभरमें मूर्च्छा त्याग दी तथा अन्यान्य बलवान् वीर भी, जो मूर्च्छामें पड़े थे, जीवित हो गये। शत्रुघ्नने देखा अश्वमेधका श्रेष्ठ अश्व सामने खड़ा है, मेरे मस्तकका मुकुट गायब है तथा मरी हुई सेना भी जी उठी है। यह सब देखकर उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे मूर्च्छासे जगे हुए बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सुमतिसे बोले—'मन्त्रिवर! उस बालकने कृपा करके यज्ञ पूर्ण करनेके लिये यह घोड़ा दे दिया है। अब हमलोग जल्दी ही श्रीरघुनाथजीके पास चलें। वे घोड़ेके आनेकी प्रतीक्षा करते होंगे।' यों कहकर वे अपने रथपर जा बैठे और घोड़ेको साथ लेकर वेगपूर्वक उस आश्रमसे दूर चले गये। भेरी और शङ्खकी आवाज बंद थी। उनके पीछे-पीछे विशाल चतुरङ्गिणी सेना चली जा रही थी। तरङ्ग-मालाओंसे सुशोभित गङ्गा नदीको पार करके उन्होंने अपने राज्यमें प्रवेश किया, जो आत्मीयजनोंके निवाससे शोभा पा रहा था। शत्रुघ्न मणिमय रथपर बैठे महान् कोदण्ड धारण किये हुए जा रहे थे। उनके साथ भरतकुमार पुष्कल और राजा सुरथ भी थे। चलते-चलते क्रमशः वे अपनी नगरी अयोध्यामें पहुँचे, जो सूर्यवंशी क्षत्रियोंसे सुशोभित थी। वहाँ अनेकों ऊँची-ऊँची पताकाएँ फहराकर उस नगरकी शोभा बढ़ा रही थीं। दुर्गके कारण उसकी सुषमा और भी बढ़ गयी थी। श्रीरामचन्द्रजीने जब सुना कि महात्मा शत्रुघ्न और वीर पुष्कलके साथ अश्व आ पहुँचा तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ और बलवानोंमें श्रेष्ठ भाई लक्ष्मणको उन्होंने शत्रुघ्नके पास भेजा। लक्ष्मण सेनाके साथ जाकर प्रवाससे आये हुए भाई शत्रुघ्नसे बड़ी प्रसन्नताके साथ मिले। शत्रुघ्नका शरीर अनेकों घावोंसे सुशोभित था। उन्होंने कुशल पूछी और तरह-तरहकी बातें कीं। उनसे मिलकर शत्रुघ्नको बड़ी प्रसन्नता हुई। महामना लक्ष्मणने भाई शत्रुघ्नके साथ अपने रथपर बैठकर विशाल सेनासहित नगरमें प्रवेश किया; जहाँ तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली पुण्यसलिला सरयू श्रीरघुनाथजीकी चरण-रजसे पवित्र होकर शरत्कालीन चन्द्रमाके समान स्वच्छ जलसे शोभा पा रही हैं। श्रीरघुनाथजी शत्रुघ्नको पुष्कलके साथ आते देख अपने आनन्दोल्लासको रोक न सके। वे अपने अश्वरक्षक बन्धुसे मिलनेके लिये ज्यों ही जाने लगे

त्यों ही भ्रातृभक्त शत्रुघ्न उनके चरणोंमें पड़ गये। घावके

चिह्नोंसे सुशोभित अपने विनयशील भाईको पैरोंपर पड़ा देख श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रेमपूर्वक उठाकर भुजाओंमें कस लिया और उनके मस्तकपर हर्षके आँसू गिराते हुए परमानन्दमें निमग्न हो गये। उस समय उन्हें जितनी प्रसन्नता हुई, वह वाणीसे परे है—उसका वर्णन नहीं हो सकता। तत्पश्चात् पुष्कलने विनयसे विह्वल होकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया। उन्हें अपने चरणोंमें पड़ा देख श्रीरघुनाथजीने गोदमें उठा लिया और कसकर छातीसे लगाया। इसी प्रकार हनुमान्, सुग्रीव, अङ्गद, लक्ष्मीनिधि, प्रतापाग्रय, सुबाहु, सुमद, विमल, नीलरत्न, सत्यवान्, वीरमणि, श्रीरामभक्त सुरथ तथा अन्य बड़भागी स्नेहियों और चरणोंमें पड़े हुए राजाओंको श्रीरघुनाथजीने अपने हृदयसे लगाया। सुमति भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले श्रीरघुनाथजीका गाढ़ आलिङ्गन करके प्रसन्नतापूर्वक उनके सामने खड़े हो गये। तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी समीप आये हुए अपने मन्त्रीकी ओर देख अत्यन्त हर्षमें भरकर बोले—'मन्त्रिवर! बताओ, ये कौन-कौन-से राजा हैं? तथा ये सब लोग यहाँ कैसे पधारे हैं? अपना अश्व कहाँ-कहाँ गया, किसने-किसने उसे पकड़ा तथा मेरे महान् बलशाली बन्धुने किस प्रकार उसको छुड़ाया?'

सुमतिने कहा—भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं, भला आपके सामने आज मैं इन सब बातोंका वर्णन कैसे करूँ। आप सबके द्रष्टा हैं, सब कुछ जानते हैं, तो भी लौकिक रीतिका आश्रय लेकर मुझसे पूछ रहे हैं। तथापि मैं सदाकी भाँति आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके कहता हूँ, सुनिये—'स्वामिन्! आप समस्त राजाओंके शिरोमणि हैं। आपकी कृपासे आपके अश्वने, जो भालपत्रके कारण बड़ी शोभा पा रहा था, इस पृथ्वीपर सर्वत्र भ्रमण किया है। प्रायः कोई राजा ऐसा नहीं निकला, जिसने अपने मान और बलके घमंडमें आकर अश्वको पकड़ा हो। सबने अपना-अपना राज्य समर्पण करके आपके चरणोंमें मस्तक झुकाया। भला, विजयकी अभिलाषा रखनेवाला कौन ऐसा राजा होगा, जो राक्षसराज रावणके प्राण-हन्ता श्रीरघुनाथजीके श्रेष्ठ अश्वको पकड़ सके? प्रभो! आपका मनोहर अश्व सर्वत्र घूमता हुआ अहिच्छत्रा नगरीमें पहुँचा। वहाँके राजा सुमदने जब सुना कि श्रीरामचन्द्रजीका अश्व आया है, तो उन्होंने सेना और पुत्रोंके साथ आकर अपना सारा अकण्टक राज्य आपकी सेवामें समर्पित कर दिया। ये हैं राजा सुमद, जो बड़े-बड़े राजा-प्रभुओंके सेव्य आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं। इनके हृदयमें बहुत दिनोंसे आपके दर्शनकी अभिलाषा थी। आज अपनी कृपादृष्टिसे इन्हें अनुगृहीत कीजिये। अहिच्छत्रा नगरीसे आगे बढ़नेपर वह अश्व राजा सुबाहुके नगरमें गया, जो सब प्रकारके बलसे सम्पन्न हैं। वहाँ राजकुमार दमनने उस श्रेष्ठ अश्वको पकड़ लिया। फिर तो युद्ध छिड़ा और पुष्कलने सुबाहु-पुत्रको मूर्च्छित करके विजय प्राप्त की। तब महाराज सुबाहु भी क्रोधमें भरकर रणभूमिमें आये और पवनकुमार हनुमान्‌जीसे बलपूर्वक युद्ध करने लगे। उनका ज्ञान शापसे विलुप्त हो गया था। हनुमान्‌जीके चरण-प्रहारसे उनका शाप दूर हुआ और वे अपने खोये हुए ज्ञानको पाकर अपना सब कुछ आपकी सेवामें अर्पण करके अश्वके रक्षक बन गये। ये ऊँचे डील-डौलवाले राजा सुबाहु हैं, जो आपको नमस्कार करते हैं। ये युद्धकी कलामें बड़े निपुण हैं। आप अपनी दया-दृष्टिसे देखकर इनके ऊपर स्नेहकी वर्षा कीजिये। तदनन्तर, अपना यशसम्बन्धी अश्व देवपुरमें गया, जो भगवान् शिवका निवासस्थान होनेके कारण अत्यन्त शोभा पा रहा था। वहाँका हाल तो आप जानते ही हैं, क्योंकि स्वयं आपने पदार्पण किया था। तत्पश्चात् विद्युन्माली दैत्यका वध किया गया। उसके बाद राजा सत्यवान् हमलोगोंसे मिले। महामते! वहाँसे आगे

जानेपर कुण्डलनगरमें राजा सुरथके साथ जो युद्ध हुआ, उसका हाल भी आपको मालूम ही है। कुण्डलनगरसे छूटनेपर अपना घोड़ा सब ओर देखटके विचरता रहा। किसीने भी अपने पराक्रम और बलके घमण्डमें आकर उसे पकड़नेका नाम नहीं लिया। नरश्रेष्ठ! तदनन्तर, लौटते समय जब आपका मनोरम अश्व महर्षि वाल्मीकिके रमणीय आश्रमपर पहुँचा, तो वहाँ जो कौतुक हुआ, उसको ध्यान देकर सुनिये। वहाँ एक सोलह वर्षका बालक आया, जो रूप-रंगमें हू-बहू आपहीके समान था। वह बलवानोंमें श्रेष्ठ था। उसने भालपत्रसे चिह्नित अश्वको देखा और उसे पकड़ लिया। वहाँ सेनापति कालजित्‌ने उसके साथ घोर युद्ध किया। किन्तु उस वीर बालकने अपनी तीखी तलवारसे सेनापतिका काम तमाम कर दिया। फिर उस वीरशिरोमणिने पुष्कल आदि अनेकों बलवानोंको युद्धमें मार गिराया और शत्रुघ्नको भी मूर्च्छित किया। तब राजा शत्रुघ्नने अपने हृदयमें महान् दुःखका अनुभव करके क्रोध किया और बलवानोंमें श्रेष्ठ उस वीरको मूर्च्छित कर दिया। शत्रुघ्नके द्वारा ज्यों ही वह मूर्च्छित हुआ त्यों ही उसीके आकारका एक दूसरा बालक वहाँ आ पहुँचा। फिर तो उसने और इसने भी एक-दूसरेका सहारा पाकर आपकी सारी सेनाका संहार कर डाला। मूर्च्छामें पड़े हुए सभी वीरोंके अस्त्र और आभूषण उतार लिये। फिर सुग्रीव और हनुमान्—इन दो वानरोंको उन्होंने पकड़कर बाँधा और इन्हें वे अपने आश्रमपर ले गये। पुनः कृपा करके उन्होंने स्वयं ही यह यज्ञका महान् अश्व लौटा दिया और मरी हुई समस्त सेनाको जीवन-दान दिया। तत्पश्चात् घोड़ा लेकर हमलोग आपके समीप आ गये। इतनी ही बातें मुझे ज्ञात हैं, जिन्हें मैंने आपके सामने प्रकट कर दिया।

वाल्मीकिजीके द्वारा सीताकी शुद्धता और अपने पुत्रोंका परिचय पाकर श्रीरामका सीताको लानेके लिये लक्ष्मणको भेजना, लक्ष्मण और सीताकी बातचीत, सीताका अपने पुत्रोंको भेजकर स्वयं न आना, श्रीरामकी प्रेरणासे पुनः लक्ष्मणका उन्हें बुलानेको जाना तथा शेषजीका वात्स्यायनको रामायणका परिचय देना

शेषजी कहते हैं—मुने! सुमतिने जो वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर रहनेवाले दो बालकोंकी चर्चा की, उसे सुनकर श्रीरामचन्द्रजी समझ गये कि वे दोनों मेरे ही पुत्र हैं, तो भी उन्होंने अपने यज्ञमें पधारे हुए महर्षि वाल्मीकिसे पूछा—मुनिवर! आपके आश्रमपर मेरे समान रूप धारण करनेवाले दो महाबली बालक कौन हैं? वहाँ किसलिये रहते हैं? सुननेमें आया है, वे धनुर्विद्यामें बड़े प्रवीण हैं। अमात्यके मुखसे उनका वर्णन सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है! वे कैसे बालक हैं, जिन्होंने खेल-खेलमें ही शत्रुघ्नको भी मूर्च्छित कर दिया और हनुमान्‌जीको भी बाँध लिया था? महर्षे! कृपा करके उन बालकोंका सारा चरित्र सुनाइये।

वाल्मीकिने कहा—प्रभो! आप अन्तर्यामी हैं; मनुष्योंके सम्बन्धकी हर एक बातका ज्ञान आपको क्यों न होगा? तथापि आपके सन्तोषके लिये मैं कह रहा हूँ। जिस समय आपने जनककिशोरी सीताको बिना किसी अपराधके वनमें त्याग दिया, उस समय वह गर्भवती थी और बारम्बार विलाप करती हुई घोर वनमें भटक रही थी। परमपवित्र जनककिशोरीको दुःखसे आतुर होकर कुररीकी भाँति रोती-बिलखती देख मैं उसे अपने आश्रमपर ले गया। मुनियोंके बालकोंने उसके रहनेके लिये एक बड़ी सुन्दर पर्णशाला तैयार कर दी। उसीमें उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। जो अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उनमेंसे एकका नाम मैंने कुश रख दिया और दूसरेका लव। वे दोनों बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति वहाँ प्रतिदिन बढ़ने लगे। समय-समयपर उनके उपनयन आदि जो-जो आवश्यक संस्कार थे, उनको भी मैंने सम्पन्न किया तथा उन्हें अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कराया। इसके सिवा आयुर्वेद, धनुर्वेद और शस्त्र-विद्या आदि सभी शास्त्रोंकी उनके रहस्योंसहित शिक्षा दी। इस प्रकार सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान कराकर मैंने उनके मस्तकपर हाथ रक्खा। वे दोनों संगीतमें भी बड़े प्रवीण हुए। उन्हें देखकर सब लोगोंको विस्मय होने लगा। षड्ज, मध्यम,

गान्धार आदि स्वरोंकी विद्यामें उन्होंने बड़ी कुशलता प्राप्त की। उनकी ऐसी योग्यता देखकर मैं प्रतिदिन उनसे परम मनोहर रामायण-काव्यका गान कराया करता हूँ। भविष्य-ज्ञानकी शक्ति होनेके कारण इस रामायणको मैंने पहलेसे बना रक्खा था। मृदङ्ग, पणव, यन्त्र और वीणा आदि बाजे बजानेमें भी वे दोनों बालक बड़े चतुर हैं। वन-वनमें घूमकर रामायण गाते हुए वे मृग और पक्षियोंको भी मोहित कर लेते हैं। श्रीराम! उन बालकोंके गीतका माधुर्य अद्भुत है। एक दिन उनका संगीत सुननेके लिये वरुणदेवता उन दोनों बालकोंको विभावरी पुरीमें ले गये। उनकी अवस्था, उनका रूप सभी मनोहर हैं। वे गान-विद्यारूपी समुद्रके पारगामी हैं। लोकपाल वरुणके आदेशसे उन्होंने मधुरस्वरमें आपके परम सुन्दर, मृदु एवं पवित्र चरित्रका गान किया। वरुणने दूसरे-दूसरे गायकों तथा अपने समस्त परिवारके साथ सुना। मित्र देवता भी उनके साथ थे। रघुनन्दन! आपका चरित्र सुधासे भी अधिक सरस एवं स्वादिष्ट है। उसे सुनते-सुनते मित्र और वरुणको तृप्ति नहीं हुई।

तत्पश्चात् मैं भी उत्तम वरुणलोकमें गया। वहाँ वरुणने प्रेमसे द्रवीभूत होकर मेरी पूजा की। वे उन दोनों बालकोंके गाने-बजानेकी विद्या, अवस्था और गुणोंसे बहुत प्रसन्न थे। उस समय उन्होंने सीताके सम्बन्धमें [आपसे कहनेके लिये] मुझसे इस प्रकार बातचीत की—सीता पतिव्रताओंमें अग्रगण्य हैं। वे शील, रूप और अवस्था—सभी सद्‌गुणोंसे सम्पन्न हैं। उन्होंने वीर पुत्रोंको जन्म दिया है। वे बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं; कदापि त्याग करनेके योग्य नहीं हैं। उनका चरित्र सदासे ही पवित्र है—इस बातके हम सभी देवता साक्षी हैं। जो लोग सीताजीके चरणोंका चिन्तन करते हैं, उन्हें तत्काल सिद्धि प्राप्त होती है। सीताके सङ्कल्पमात्रसे ही संसारकी सृष्टि, स्थिति और लय आदि कार्य होते हैं। ईश्वरीय व्यापार भी उन्हींसे सम्पन्न होते हैं। सीता ही मृत्यु और अमृत हैं। वे ही ताप देती और वे ही वर्षा करती हैं। श्रीरघुनाथजी! आपकी जानकी ही स्वर्ग, मोक्ष, तप और दान हैं। ब्रह्मा, शिव तथा हम सभी लोकपालोंको वे ही उत्पन्न करती हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌के पिता और सीता सबकी माता हैं। आप सर्वज्ञ हैं, साक्षात् भगवान् हैं; अतः आप भी इस बातको जानते हैं कि सीता नित्य शुद्ध हैं। वे आपको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं; इसलिये जनककिशोरी सीताको शुद्ध एवं अपनी प्रिया जानकर आप सदा उनका आदर करें। प्रभो! आपका या सीताका किसी शापके कारण पराभव नहीं हो सकता—मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी! मेरी ये सभी बातें आप साक्षात् महाराज श्रीरामचन्द्रजीसे कहियेगा।'

इस प्रकार सीताको स्वीकार करनेके सम्बन्धमें वरुणने मुझसे अपना विचार प्रकट किया था। इसी तरह अन्य सब लोकपालोंने भी अपनी-अपनी सम्मति दी है। देवता, असुर और गन्धर्व—सबने कौतूहलवश आपके पुत्रोंके मुखसे रामायणका गान सुना है। सुनकर सभी प्रसन्न ही हुए हैं! उन्होंने आपके पुत्रोंकी बड़ी प्रशंसा की है। उन दोनों बालकोंने अपने रूप, गान, अवस्था और गुणोंके द्वारा तीनों लोकोंको मोह लिया है। लोकपालोंने आशीर्वादरूपसे जो कुछ दिया, उसे आपके पुत्रोंने स्वीकार किया। उन्होंने ऋषियों तथा अन्य लोगोंसे भी बढ़कर कीर्ति पायी है। पुण्यश्लोक(पवित्र यशवाले) पुरुषोंके शिरोमणि श्रीरघुनाथजी! आप त्रिलोकीनाथ होकर भी इस समय गृहस्थ-धर्मकी लीला कर रहे हैं; अतः विद्या, शील एवं सद्‌गुणोंसे विभूषित अपने दोनों पुत्रोंको उनकी मातासहित ग्रहण कीजिये। सीताने ही आपकी मरी हुई सेनाको जिलाकर उसे प्राण-दान दिया है—इससे सब लोगोंको उनकी शुद्धिका विश्वास हो गया है। [यह लोगोंकी प्रतीतिके लिये प्रत्यक्ष प्रमाण है] यह प्रसङ्ग पतित पुरुषोंको भी पावन बनानेवाला है। मानद! सीताकी शुद्धिके विषयमें न तो आपसे कोई बात छिपी है, न हमलोगोंसे और न देवताओंसे ही। केवल साधारण लोगोंको कुछ भ्रम हो गया था, किन्तु उपर्युक्त घटनासे वह भी अवश्य दूर हो गया।

शेषजी कहते हैं—मुने! भगवान् श्रीराम यद्यपि सर्वज्ञ हैं, तो भी जब वाल्मीकिजीने उन्हे इस प्रकार समझाया, तो वे उनकी स्तुति और नमस्कार करके लक्ष्मणसे बोले—'तात! तुम सुमित्रसहित रथपर बैठकर धर्मचारिणी सीताको पुत्रोंसहित ले आनेके लिये अभी जाओ। वहाँ मेरे तथा मुनिके इन वचनोंको सुनाना और सीताको समझा-बुझाकर शीघ्र ही अयोध्यापुरीमे ले आना।'

लक्ष्मणने कहा—प्रभो! मैं अभी जाऊँगा, यदि आप सब लोगोंका प्रिय संदेश सुनकर महारानी सीताजी यहाँ पधारेंगी तो समझूँगा, मेरी यात्रा सफल हो गयी।

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर लक्ष्मण उनकी आज्ञासे रथपर बैठे और मुनिके एक शिष्य तथा सुमित्रको साथ लेकर

आश्रमको गये। रास्तेमें यह सोचते जाते थे कि 'भगवती सीताको किस प्रकार प्रसन्न करना चाहिये ?' ऐसा विचार करनेसे उनके हृदयमें कभी हर्ष होता था और कभी संकोच। वे दोनों भावोंके बीचकी स्थितिमें थे। इसी अवस्थामें सीताके आश्रमपर पहुँचे, जो उनके श्रमको दूर करनेवाला था। वहाँ लक्ष्मण रथसे उतरकर सीताके समीप गये और आँखोंमें आँसू भरकर 'आर्ये ! पूजनीये !! भगवति !! कल्याणमयी !.' इत्यादि सम्बोधनोंका बारंबार उच्चारण करते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े। भगवती सीताने वात्सल्य-प्रेमसे विह्वल होकर लक्ष्मणको उठाया और इस प्रकार पूछा—'सौम्य ! मुनिजनोंको ही प्रिय लगनेवाले इस वनमें तुम कैसे आये ? बताओ, माता कौसल्याके गर्भरूपी शुक्तिसे जो मौक्तिकके समान प्रकट हुए हैं, वे मेरे आराध्यदेव श्रीरघुनाथजी तो कुशलसे हैं न ? देवर ! उन्होंने अकीर्तिसे डरकर तुम्हे मेरे परित्यागका कार्य सौंपा था। यदि इससे भी संसारमें उनकी निर्मल कीर्तिका विस्तार हो सके तो मुझे संतोष ही होगा। मैं अपने प्राण देकर भी पतिदेवके सुयशको स्थिर रखना चाहती हूँ। उन्होंने मुझे त्याग दिया है तो भी मैंने उनका थोड़ी देरके लिये भी कभी त्याग नहीं किया है। [निरन्तर उन्हींका चिन्तन करती रहती हूँ] मेरे ऊपर सदा कृपा रखनेवाली माता कौसल्याको तो कोई कष्ट नहीं है ? वे कुशलसे हैं न ? भरत आदि भाई भी तो सकुशल हैं न ? तथा महाभागा सुमित्रा, जो मुझे अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय मानती है, कैसी हैं ? उनकी कुशल बताओ।'

इस प्रकार सीताने जब बारंबार सबकी कुशल पूछी तो लक्ष्मणने कहा—'देवि ! महाराज कुशलसे हैं और आपकी भी कुशलता पूछ रहे हैं। माता कौसल्या, सुमित्रा तथा राजभवनकी अन्य सभी देवियोंने प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देते हुए आपकी कुशल पूछी है। भरत और शत्रुघ्नने कुशल-प्रश्नके साथ ही आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम कहलाया है, जिसे मैं सेवामें निवेदन करता हूँ। गुरुओं तथा समस्त गुरुपत्नियोंने भी आशीर्वाद दिया है, साथ ही कुशल-मङ्गल भी पूछा है। महाराज श्रीराम आपको बुला रहे हैं। हमारे स्वामीने कुछ रोते-रोते आपके प्रति जो सन्देश दिया है, उसे सुनिये। वक्ताके हृदयमें जो बात रहती है, वह उसकी वाणीमें निरसन्देह व्यक्त हो जाती है [श्रीरघुनाथजीने कहा है—] 'सतीशिरोमणि सीते ! लोग मुझे ही सबके ईश्वरका भी ईश्वर कहते हैं; किन्तु मैं कहता हूँ, जगत्‌में जो कुछ हो रहा है, इसका स्वतन्त्र कारण अदृष्ट (प्रारब्ध) ही है। जो सबका ईश्वर है, वह भी प्रत्येक कार्यमें अदृष्टका ही अनुसरण करता है। मेरे धनुष तोड़नेमें, कैकेयीकी बुद्धि भ्रष्ट होनेमें, पिताकी मृत्युमें, मेरे वन जानेमें, वहाँ तुम्हारा हरण होनेमें, समुद्रके पार जानेमें, राक्षसराज रावणके मारनेमें, प्रत्येक युद्धके अवसरपर वानर, भालू और राक्षसोंकी सहायता मिलनेमें, तुम्हारी प्राप्तिमें, मेरी प्रतिज्ञाके पूर्ण होनेमें, पुनः अपने बन्धुओंके साथ संयोग होनेमें, राज्यकी प्राप्तिमें तथा फिर मुझसे मेरी प्रियाका वियोग होनेमें एकमात्र अदृष्ट ही अनिवार्य कारण है। देवि ! आज वही अदृष्ट फिर हम दोनोंका संयोग करानेके लिये प्रसन्न हो रहा है। ज्ञानीलोग भी अदृष्टका ही अनुसरण करते हैं। उस अदृष्टका भोगसे ही क्षय होता है; अतः तुमने वनमें रहकर उसका भोग पूरा कर लिया है। सीते ! तुम्हारे प्रति जो मेरा अकृत्रिम स्नेह है, वह निरन्तर बढ़ता रहता है, आज वही स्नेह निन्दा करनेवाले लोगोंकी उपेक्षा करके तुम्हें आदरपूर्वक बुला रहा है। दोषकी आशङ्का मात्रसे भी स्नेहकी निर्मलता नष्ट हो जाती है; इसलिये विद्वानोंको [दोषके मार्जनद्वारा] स्नेहको शुद्ध करके ही उसका आस्वादन करना चाहिये। कल्याणी ! [तुम्हें वनमें भेजकर] मैंने तुम्हारे प्रति अपने स्नेहकी शुद्धि ही की है; अतः तुम्हें इस विषयमें कुछ अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये [मैंने तुम्हारा त्याग किया है—ऐसा नहीं मानना चाहिये]। शिष्ट पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करके मैंने निन्दा करनेवाले लोगोंकी भी रक्षा ही की है। देवि ! हम दोनोंकी जो निन्दा की गयी है, इससे हमारी तो प्रत्येक अवस्थामें शुद्धि ही होगी; किन्तु ये मूर्खलोग जो महापुरुषोंके चरित्रको लेकर निन्दा करते हैं; इससे वे स्वयं ही नष्ट हो जायँगे। हम दोनोंकी कीर्ति उज्ज्वल है, हम दोनोंका स्नेह-रस उज्ज्वल है, हमलोगोंके वंश उज्ज्वल हैं तथा हमारे सम्पूर्ण कर्म भी उज्ज्वल हैं। इस पृथ्वीपर जो हम दोनोंकी कीर्तिका गान करनेवाले पुरुष हैं, वे भी उज्ज्वल रहेंगे। जो हम दोनोंके प्रति भक्ति रखते हैं, वे संसार-सागरसे पार हो जायँगे।' इस प्रकार आपके गुणोंसे प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजीने यह संदेश दिया है; अतः अब आप अपने पतिदेवके चरण-कमलोंका दर्शन करनेके लिये अपने मनको उनके प्रति सदय बनाइये। महारानी ! आपके दोनों कुमार हाथीपर बैठकर आगे-आगे चलें, आप शिविकामें आरूढ़ होकर मध्यमें रहें और मैं आपके पीछे-पीछे चलूँ। इस तरह आप अपनी पुरी अयोध्यामें पधारें। वहाँ चलकर जब आप अपने प्रियतम श्रीरामसे मिलेंगी, उस समय यज्ञशालामें सब ओरसे आयी हुई सम्पूर्ण राज-महिलाओंको,

समस्त ऋषि-पत्नियोंको तथा माता कौसल्याको भी बड़ा आनन्द होगा। नाना प्रकारके बाजे बजेंगे, मङ्गलगान होंगे तथा अन्य ऐसे-ही समारोहोंके द्वारा आज आपके शुभागमन-का महान् उत्सव मनाया जायगा।'

शेषजी कहते हैं—मुने! यह सन्देश सुनकर महारानी सीताने कहा—'लक्ष्मण! मैं धर्म, अर्थ और कामसे शून्य हूँ। भला मेरे द्वारा महाराजका कौन-सा कार्य सिद्ध होगा? पाणिग्रहणके समय जो उनका मनोहर रूप मेरे हृदयमें बस गया, वह कभी अलग नहीं होता। ये दोनों कुमार उन्हींके तेजसे प्रकट हुए हैं। ये वंशके अङ्कुर और महान् वीर हैं। इन्होंने धनुर्विद्यामें विशिष्ट योग्यता प्राप्त की है। इन्हें पिताके समीप ले जाकर यत्नपूर्वक इनका लालन-पालन करना। मैं तो अब यहीं रहकर तपस्याके द्वारा अपनी इच्छाके अनुसार श्रीरघुनाथजीकी आराधना करूँगी। महाभाग! तुम वहाँ जाकर सभी पूज्यजनोंके चरणोंमें मेरा प्रणाम कहना और सबसे कुशल बताकर मेरी ओरसे भी सबकी कुशल पूछना।'

इसके बाद सीताने अपने दोनों बालकोंको आदेश दिया—'पुत्रो! अब तुम अपने पिताके पास जाओ। उनकी

सेवा-शुश्रूषा करना। वे तुम दोनोंको अपना पद प्रदान करेंगे।' कुमार कुश और लव नहीं चाहते थे कि हम माताके चरणोंसे अलग हों; फिर भी उनकी आज्ञा मानकर वे लक्ष्मणके साथ गये। वहाँ पहुँचनेपर भी वे वाल्मीकिजीके ही चरणोंके निकट गये। लक्ष्मणने भी बालकोंके साथ जाकर पहले महर्षिको ही प्रणाम किया। फिर वाल्मीकि, लक्ष्मण तथा वे दोनों कुमार सब एक साथ मिलकर चले और श्रीराम-चन्द्रजीको सभामें स्थित जान उनके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो वहीं गये। लक्ष्मणने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके सीताके साथ जो कुछ बातचीत हुई थी, वह सब उनसे कह सुनायी। उस समय परम बुद्धिमान् लक्ष्मण हर्ष और शोक—दोनों भावोंमें मग्न हो रहे थे।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—सखे! एक बार फिर वहाँ जाओ और महान् प्रयत्न करके सीताको शीघ्र यहाँ ले आओ। तुम्हारा कल्याण हो। मेरी ये बातें जानकीसे कहना—'देवि! क्या वनमें तपस्या करके तुमने मेरे सिवा कोई दूसरी गति प्राप्त करनेका विचार किया है? अथवा मेरे अतिरिक्त और कोई गति सुनी या देखी है जो मेरे बुलानेपर भी नहीं आ रही हो? तुम अपनी ही इच्छाके कारण यहाँसे मुनियों-को प्रिय लगनेवाले वनमें गयी थीं। वहाँ तुमने मुनिपत्नियों-का पूजन किया और मुनियोंके भी दर्शन किये; अब तो तुम्हारी इच्छा पूरी हुई! अब क्यों नहीं आतीं? जानकी! स्त्री कहीं भी क्यों न जाय, पति ही उसके लिये एकमात्र गति है। वह गुणहीन होनेपर भी पत्नीके लिये गुणोंका सागर है। फिर यदि वह मनके अनुकूल हुआ तब तो उसकी मान्यताके विषयमें कहना ही क्या है। उत्तम कुलकी स्त्रियाँ जो-जो कार्य करती हैं, वह सब पतिको सन्तुष्ट करनेके लिये ही होता है। परन्तु मैं तो तुमपर पहलेसे ही विशेष सन्तुष्ट हूँ और इस समय वह सन्तोष और भी बढ़ गया है। त्याग, जप, तप, दान, व्रत, तीर्थ और दया आदि सभी साधन मेरे प्रसन्न होनेपर ही सफल होते हैं। मेरे सन्तुष्ट होने-पर सम्पूर्ण देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

लक्ष्मणने कहा—भगवन्! सीताको ले आनेके उद्देश्यसे प्रसन्न होकर आपने जो-जो बातें कही हैं, वह सब मैं उन्हें विनयपूर्वक सुनाऊँगा।

ऐसा कहकर लक्ष्मणने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त वेगशाली रथपर सवार हो वे तुरंत सीताके

आश्रमपर चल दिये । तदनन्तर वाल्मीकिजीने श्रीरामचन्द्रजी-के दोनों पुत्रोंकी ओर, जो परम शोभायमान और अत्यन्त तेजस्वी थे, देखा तथा किञ्चित् मुसकराकर कहा—'वत्स ! तुम दोनों वीणा बजाते हुए मधुर स्वरसे श्रीरामचन्द्रजीके अद्भुत चरित्रका गान करो ।' महर्षिके इस प्रकार आज्ञा देने-पर उन बड़भागी बालकोंने महान् पुण्यदायक श्रीरामचरित्र-का गान किया, जो सुन्दर वाक्यों और उत्तम पदोंमें चित्रित

हुआ था, जिसमें धर्मकी साक्षात् विधि, पातिव्रत्यके उपदेश, महान् भ्रातृ-स्नेह तथा उत्तम गुरुभक्तिका वर्णन है । जहाँ स्वामी और सेवककी नीति मूर्तिमान् दिखायी देती है तथा जिसमें साक्षात् श्रीरघुनाथजीके हाथसे पापाचारियोंको दण्ड मिलनेका वर्णन है । बालकोंके उस गानसे सारा जगत् मुग्ध हो गया । स्वर्गके देवता भी विस्मयमें पड़ गये । किन्नर भी वह गान सुनकर मूर्च्छित हो गये । श्रीराम आदि सभी राजा नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाने लगे । वे गीतके पञ्चम स्वरका आलाप सुनकर ऐसे मोहित हुए कि हिल-डुल नहीं सकते थे; चित्रलिखित-से जान पड़ते थे ।

तत्पश्चात् महर्षि वाल्मीकिने कुश और लवसे कृपा-पूर्वक कहा—'वत्स ! तुमलोग नीतिके विद्वानोंमें श्रेष्ठ हो, अपने पिताको पहचानो [ये श्रीरघुनाथजी तुम्हारे पिता हैं; इनके प्रति पुत्रोचित बर्ताव करो] ।' मुनिका यह वचन सुन-कर दोनों बालक विनीतभावसे पिताके चरणोंमें लग गये । माताकी भक्तिके कारण उन दोनोंके हृदय अत्यन्त निर्मल हो गये थे । श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने दोनों बालकोंको छातीसे लगा लिया । उस समय उन्होंने ऐसा माना कि मेरा धर्म ही इन दोनों पुत्रोंके रूपमें मूर्तिमान् होकर उपस्थित हुआ है । वात्स्यायनजी ! सभामें बैठे हुए लोगोंने भी श्रीरामचन्द्रजीके पुत्रोंका मनोहर मुख देखकर जानकीजी की पति-भक्तिको सत्य माना ।

शेषजीके मुखसे इतनी कथा सुनकर वात्स्यायनको सम्पूर्ण धर्मोंसे युक्त रामायणके विषयमें कुछ सुननेकी इच्छा हुई; अतएव उन्होंने पूछा—'स्वामिन् ! महर्षि वाल्मीकिने इस रामायण नामक महान् काव्यकी रचना किस समय की, किस कारणसे की तथा इसके भीतर किन-किन बातोंका वर्णन है ?'

शेषजीने कहा—एक समयकी बात है, वाल्मीकिजी महान् वनके भीतर गये, जहाँ ताल, तमाल और खिले हुए पलाशके वृक्ष शोभा पा रहे थे । कोयलकी मीठी तान और भ्रमरोंकी गुंजारसे गूँजते रहनेके कारण वह वन्यप्रदेश सब ओरसे रमणीय जान पड़ता था । कितने ही मनोहर पक्षी वहाँ बसेरा ले रहे थे । महर्षि जहाँ खड़े थे, उसके पास ही दो सुन्दर क्रौञ्चपक्षी कामबाणसे पीड़ित हो रमण कर रहे थे । दोनोंमें परस्पर स्नेह था और दोनों एक-दूसरेके सम्पर्कमें रहकर अत्यन्त हर्षका अनुभव करते थे । इसी समय एक व्याध वहाँ आया और उस निर्दयीने उन पक्षियोंमेंसे एकको

जो बड़ा सुन्दर था, बाणसे मार गिराया। यह देख मुनिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने सरिताका पावन जल हाथमें लेकर क्रौञ्चकी हत्या करनेवाले उस निषादको शाप दिया—'ओ निषाद! तुझे कभी भी शाश्वत शान्ति नहीं मिलेगी; क्योंकि तूने इन क्रौञ्च पक्षियोंमेंसे एककी, जो कामसे मोहित हो रहा था, [विना किसी अपराधके] हत्या कर डाली है।'*

यह वाक्य छन्दोबद्ध श्लोकके रूपमें निकला; इसे सुनकर मुनिके शिष्योंने प्रसन्न होकर कहा—'स्वामिन्! आपने शाप देनेके लिये जिस वाक्यका प्रयोग किया है, उसमें सरस्वती देवीने श्लोकका विस्तार किया है। मुनिश्रेष्ठ! यह वाक्य अत्यन्त मनोहर श्लोक बन गया है।' उस समय ब्रह्मर्षि वाल्मीकिजीके मनमें भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी अवसरपर ब्रह्माजीने आकर वाल्मीकिजीसे कहा—'मुनीश्वर!

तुम धन्य हो! आज सरस्वती तुम्हारे मुखमें स्थित होकर श्लोकरूपमें प्रकट हुई है। इसलिये अब तुम मधुर अक्षरोंमें सुन्दर रामायणकी रचना करो। मुखसे निकलनेवाली वही वाणी धन्य है, जो श्रीरामनामसे युक्त हो। इसके सिवा, अन्य जितनी बातें हैं, सब कामकी कथाएँ हैं, ये मनुष्योंके लिये केवल सूतक (अपवित्रता) उत्पन्न करती हैं। अतः तुम श्रीरामचन्द्रजीके लोकप्रसिद्ध चरित्रको लेकर काव्य-रचना करो, जिससे पद-पदपर पापियोंके पापका निवारण होगा।' इतना कहकर ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओंके साथ अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर, एक दिन वाल्मीकिजी नदीके मनोहर तटपर ध्यान लगा रहे थे। उस समय उनके हृदयमें सुन्दर रूपधारी श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए। नील पद्म-दलके समान

श्याम विग्रहवाले कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन पाकर मुनिने उनके भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालके चरित्रोंका साक्षात्कार किया। फिर तो उन्हें बड़ा आनन्द मिला और उन्होंने मनोहर पदों तथा नाना प्रकारके छन्दोंमें रामायणकी रचना की। उसमें अत्यन्त मनोरम छः काण्ड हैं—बाल, आरण्यक, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध तथा उत्तर। महामते! जो इन काण्डोंको सुनता है, वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। बालकाण्डमें—राजा दशरथने प्रसन्नतापूर्वक पुत्रेष्टि यज्ञ करके चार पुत्र प्राप्त किये, जो साक्षात् सनातन ब्रह्म श्रीहरिके अवतार थे। फिर श्रीरामचन्द्रजीका विश्वामित्रके यज्ञमें जाना, वहाँसे मिथिलामें जाकर सीतासे विवाह करना, मार्गमें परशुरामजीसे मिलते हुए अयोध्यापुरीमें

* मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चपक्षिणोरेकमवधीः काममोहितम्॥

आना; वहाँ युवराजपदपर अभिषेक होनेकी तैयारी, फिर माता कैकेयीके कहनेसे वनमें जाना, गङ्गापार करके चित्रकूट पर्वतपर पहुँचना तथा वहाँ सीता और लक्ष्मणके साथ निवास करना—इत्यादि प्रसङ्गोंका वर्णन है । इसके अतिरिक्त न्यायके अनुसार चलनेवाले भरतने जब अपने भाई श्रीरामके वनमें जानेका समाचार सुना तो वे भी उन्हें लौटानेके लिये चित्रकूट पर्वतपर गये; किन्तु उन्हें जब न लौटा सके तो स्वयं भी उन्होंने अयोध्यासे बाहर नन्दिग्राममें वास किया । ये सब बातें भी बालकाण्डके ही अन्तर्गत हैं । इसके बाद आरण्यककाण्डमें आये हुए विषयोंका वर्णन सुनिये । सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामका भिन्न-भिन्न मुनियोंके आश्रमोंमें निवास करना; वहाँ-वहाँके स्थान आदिका वर्णन, शूर्पणखाकी नाकका काटा जाना, खर और दूषणका विनाश, मायामय मृगके रूपमें आये हुए मारीचका मारा जाना, राक्षस रावणके द्वारा राम-पत्नी सीताका हरण; श्रीरामका विरहाकुल होकर वनमें भटकना और मानवोचित लीलाएँ करना; फिर कबन्धसे भेंट होना; पम्पासरोवरपर जाना और श्रीहनुमान्‌जीसे मिलाप होना—ये सभी कथाएँ आरण्यककाण्डके नामसे प्रसिद्ध हैं । तदनन्तर श्रीरामद्वारा सप्त ताल-वृक्षोंका भेदन; बालिका अद्भुत वध, सुग्रीवको राज्यदान; लक्ष्मणके द्वारा सुग्रीवको कर्तव्य-पालनका सन्देश देना; सुग्रीवका नगरसे निकलना, सैन्यसंग्रह, सीताकी खोजके लिये वानरोंका भेजा जाना । वानरोंकी सम्पातिसे भेंट; हनुमान्‌जीके द्वारा समुद्र-लङ्घन और दूसरे तटपर उनका पहुँचना—ये सब प्रसङ्ग किष्किन्धाकाण्डके अन्तर्गत हैं । यह काण्ड अद्भुत है । अब सुन्दरकाण्डका वर्णन सुनिये, जहाँ श्रीरामचन्द्रजीकी अद्भुत कथाका उल्लेख है । हनुमान्‌जीका सीताकी खोजके लिये लङ्काके प्रत्येक घरमें घूमना तथा वहाँके विचित्र-विचित्र दृश्योंका देखना; फिर सीताका दर्शन, उनके साथ बातचीत तथा वनका विध्वंस, कुपित हुए राक्षसोंके द्वारा हनुमान्‌जीका बन्धन, हनुमान्‌जीके द्वारा लङ्काका दाह, फिर समुद्रके इस पार आकर उनका वानरोंसे मिलना । श्रीरामचन्द्रजीको सीताकी दी हुई पहचान अर्पण करना, सेनाका लङ्काके लिये प्रस्थान; समुद्रमें पुल बाँधना तथा सेनामें शुक और सारणका आना—ये सब विषय सुन्दरकाण्डमें हैं । इस प्रकार सुन्दरकाण्डका परिचय दिया गया । युद्धकाण्डमें युद्ध और सीताकी प्राप्तिका वर्णन है । उत्तरकाण्डमें श्रीरामका ऋषियोंके साथ संवाद तथा यज्ञका आरम्भ आदि है । उसमें श्रीरामचन्द्रजीकी अनेकों कथाओंका वर्णन है, जो श्रोताओंके पापको नाश करनेवाली हैं । इस प्रकार मैंने छः काण्डोंका वर्णन किया । ये ब्रह्म-हत्याके पापको भी दूर करनेवाले हैं । उनकी कथाएँ बड़ी मनोहर हैं । मैंने यहाँ संक्षेपसे ही इनका परिचय दिया है । जो छः काण्डोंसे चिह्नित और चौबीस हजार श्लोकोंसे युक्त है, उसी वाल्मीकिनिर्मित ग्रन्थको रामायण नाम दिया गया है ।

सीताका आगमन, यज्ञका आरम्भ, अश्वकी मुक्ति, उसके पूर्वजन्मकी कथा, यज्ञका उपसंहार और रामभक्ति तथा अश्वमेध-कथा-श्रवणकी महिमा

शेषजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर लक्ष्मणने आकर पुनः जानकीके चरणोंमें प्रणाम किया । विनयशील लक्ष्मणको आया देख पुनः अपने बुलाये जानेकी बात सुनकर सीताने कहा—'सुमित्रानन्दन ! मुझे श्रीरामचन्द्रजीने महान् वनमें त्याग दिया है; अतः अब मैं कैसे चल सकती हूँ ? यहीं महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर रहूँगी और निरन्तर श्रीरामका स्मरण किया करूँगी ।' उनकी बात सुनकर लक्ष्मणने कहा—'माताजी ! आप पतिव्रता हैं, श्रीरघुनाथजी बारंबार आपको बुला रहे हैं । पतिव्रता स्त्री अपने पतिके अपराधको मनमें नहीं लाती; इसलिये इस उत्तम रथपर बैठिये और मेरे साथ चलनेकी कृपा कीजिये ।' पतिको ही देवता माननेवाली जानकीने लक्ष्मणकी ये सब बातें सुनकर आश्रमकी सम्पूर्ण तपस्विनी स्त्रियों तथा वेदवेत्ता मुनियोंको प्रणाम किया और मन-ही-मन श्रीरामका स्मरण करती हुई वे रथपर बैठकर अयोध्यापुरीकी ओर चलीं । उस समय उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण धारण किये थे । क्रमशः नगरीमें पहुँचकर वे सरयू नदीके तटपर गयीं, जहाँ स्वयं श्रीरघुनाथजी विराजमान थे । पातिव्रत्यमें तत्पर रहनेवाली सुन्दरी सीता वहाँ जाकर रथसे उतर गयीं और लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें लग गयीं । प्रेमविह्वला जानकीको

आयी देख श्रीरामचन्द्रजी बोले—'साध्वि ! इस समय तुम्हारे साथ मैं यज्ञकी समाप्ति करूँगा ।'

तत्पश्चात् सीता महर्षि वाल्मीकि तथा अन्यान्य ब्रह्मर्षियोंको नमस्कार करके माताओंके चरणोंमें प्रणाम करनेके लिये उत्कण्ठापूर्वक उनके पास गयीं । वीर पुत्रोंको जन्म देनेवाली अपनी प्यारी बहू जानकीको आती देख कौसल्याको बड़ा हर्ष हुआ । उन्होंने सीताको बहुत आशीर्वाद दिया । कैकेयीने भी विदेहनन्दिनीको अपने चरणोंमें प्रणाम करती देखकर आशीर्वाद देते हुए कहा—'बेटी ! तुम अपने पति और पुत्रोंके साथ चिरकालतक जीवित रहो ।' इसी प्रकार सुमित्राने भी पुत्रवती जानकीको अपने पैरपर पड़ी देख उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया । श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी पत्नी सती-साध्वी सीता सबको प्रणाम करके बहुत प्रसन्न हुईं । श्रीरघुनाथजीकी धर्मपत्नीको उपस्थित देख महर्षि कुम्भजने सोनेकी सीताको हटा दिया और उसकी जगह उन्हींको बिठाया । उस समय यज्ञमण्डपमें सीताके साथ बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ी शोभा हुई । फिर उत्तम समय आनेपर श्रीरघुनाथजीने यज्ञका कार्य आरम्भ किया । उन्होंने उत्तम बुद्धिवाले वसिष्ठजीसे पूछा—'स्वामिन् ! अब इस श्रेष्ठ यज्ञमें कौन-सा आवश्यक कर्तव्य बाकी रह गया है ?' रामकी बात सुनकर महाबुद्धिमान् गुरुदेवने कहा—'अब आपको ब्राह्मणोंकी सन्तोषजनक पूजा करनी चाहिये ।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि कुम्भजको पूज्य मानकर सबसे पहले उन्हींका पूजन किया । रत्न और सुवर्णोंके अनेकों

भार, मनुष्योंसे भरे हुए कई देश तथा अत्यन्त प्रीतिदायक वस्तुएँ दक्षिणामें देकर उन्होंने पत्नीसहित अगस्त्य मुनिका सत्कार किया । फिर उत्तम रत्न आदिके द्वारा पत्नीसहित महर्षि च्यवनका पूजन किया । इसी प्रकार अन्यान्य महर्षियों तथा सम्पूर्ण तपस्वी ऋत्विजोंका भी उन्होंने अनेकों भार सुवर्ण और रत्न आदिके द्वारा सत्कार किया । उस यज्ञमें श्रीरामने ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी । दीनों, अंधों और दुखियोंको भी नाना प्रकारके दान दिये । विचित्र-विचित्र वस्त्र तथा मधुर भोजन वितीर्ण किये । भगवान्ने शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार ऐसा दान किया, जो सबको सन्तोष देनेवाला था । उन्हें सबको दान देते देख महर्षि कुम्भजको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने अश्वको नहलानेके निमित्त अमृतके समान जल मँगानेके लिये चौसठ राजाओंको उनकी रानियोंसहित बुलाया । श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकारके अलङ्कारोंसे सुशोभित

सीताजीके साथ सोनेके घड़ेमें जल ले आनेके लिये गये। उनके पीछे माण्डवीके साथ भरत, उर्मिलाके साथ लक्ष्मण, श्रुतिकीर्तिके साथ शत्रुघ्न; कान्तिमतीके साथ पुष्कल, कोमलाके साथ लक्ष्मीनिधि; महामूर्तिके साथ विभीषण; सुमनोहारीके साथ सुरथ तथा मोहनाके साथ सुग्रीव भी चले। इसी प्रकार और कई राजाओंको वसिष्ठ ऋषिने भेजा। उन्होंने स्वयं भी शीतल एवं पवित्र जलसे भरी हुई सरयूमें जाकर वेदमन्त्रके द्वारा उसके जलको अभिमन्त्रित किया। वे बोले—'हे जल! तुम सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञके लिये निश्चित किये हुए इन अश्वको पवित्र करो।'

मुनिके अभिमन्त्रित किये हुए उस जलको राम आदि सभी राजा ब्राह्मणोंद्वारा सुसंस्कृत यज्ञ-मण्डपमें ले आये। उस निर्मल जलसे दूधके समान श्वेत अश्वको नहलाकर महर्षि कुम्भजने मन्त्रद्वारा रामके हाथसे उसे अभिमन्त्रित कराया। श्रीरामचन्द्रजी अश्वको लक्ष्य करके बोले—'महाबाहु! ब्राह्मणोंसे भरे हुए इस यज्ञमण्डपमें तुम मुझे पवित्र करो।' ऐसा कहकर श्रीरामने सीताके साथ उस अश्वका स्पर्श किया। उस समय सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको कौतूहलवश यह

बड़ी विचित्र बात मालूम पड़ी। वे आपसमें कहने लगे-'अहो! जिनके नामका स्मरण करनेसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं, वे ही श्रीरामचन्द्रजी यह क्या कह रहे हैं [क्या अश्व इन्हें पवित्र करेगा ?]।' यज्ञ-मण्डपमें श्रीरामके हाथका स्पर्श होते ही उस अश्वने पशु-शरीरका परित्याग करके तुरंत दिव्यरूप धारण कर लिया। घोड़ेका शरीर छोड़कर दिव्यरूपधारी मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए उस अश्वको देखकर यज्ञमें आये हुए सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी स्वयं सब कुछ जानते थे, तो भी सब लोगोंको इस रहस्यका ज्ञान करानेके लिये उन्होंने पूछा—'दिव्य शरीर धारण करनेवाले पुरुष! तुम कौन हो? अश्व-योनिमें क्यों पड़े थे तथा इस समय क्या करना चाहते हो? ये सब बातें बताओ।'

रामकी बात सुनकर दिव्यरूपधारी पुरुषने कहा—'भगवन्! आप बाहर और भीतर सर्वत्र व्याप्त हैं; अतः आपसे कोई बात छिपी नहीं है। फिर भी यदि पूछ रहे हैं तो मैं आपसे सब कुछ ठीक-ठीक बता रहा हूँ। पूर्वजन्ममें मैं एक परम धर्मात्मा ब्राह्मण था; किन्तु मुझसे एक अपराध हो गया। महाबाहो! एक दिन मैं पापहारिणी सरयूके तटपर गया और वहाँ स्नान, पितरोंका तर्पण तथा विधिपूर्वक दान करके वेदोक्त रीतिसे आपका ध्यान करने लगा। महाराज! उस समय मेरे पास बहुत-से मनुष्य आये और उन सबको ठगनेके लिये मैंने कई प्रकारका दम्भ प्रकट किया। इसी समय महातेजस्वी महर्षि दुर्वासा अपनी इच्छाके अनुसार पृथ्वीपर विचरते हुए वहाँ आये और सामने खड़े होकर मुझ दम्भीको देखने लगे। मैंने मौन धारण कर रक्खा था; न तो उठकर उन्हें अर्घ्य दिया और न उनके प्रति कोई स्वागतपूर्ण वचन ही मुँहसे निकाला। मैं उन्मत्त हो रहा था। महामति दुर्वासाका स्वभाव तो यों ही तीक्ष्ण है, मुझे दम्भ करते देख वे और भी प्रचण्ड क्रोधके वशीभूत हो गये तथा शाप देते हुए बोले—'तापसाधम! यदि तू सरयूके तटपर ऐसा घोर दम्भ कर रहा है तो पशु-योनिको प्राप्त हो जा।' मुनिके दिये हुए शापको सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने उनके चरण पकड़ लिये। रघुनन्दन! तब मुनिने मुझपर महान् अनुग्रह किया। वे बोले—'तापस! तू श्रीरामचन्द्रजीके अश्वमेध यज्ञका अश्व बनेगा; फिर भगवान्‌के हाथका स्पर्श होनेसे तू दम्भहीन, दिव्य एवं मनोहर रूप धारण कर परमपदको प्राप्त हो जायगा।' महर्षिका दिया हुआ

यह शाप भी मेरे लिये अनुग्रह बन गया । राम ! अनेकों जन्मोंके पश्चात् देवता आदिके लिये भी जिसकी प्राप्ति होनी कठिन है, वही आपकी अङ्गुलियोंका अत्यन्त दुर्लभ स्पर्श आज मुझे प्राप्त हुआ है । महाराज ! अब आज्ञा दीजिये, मैं आपकी कृपासे महत् पदको प्राप्त हो रहा हूँ । जहाँ न शोक है, न जरा; न मृत्यु है, न कालका विलास—उस स्थानको जाता हूँ । राजन् ! यह सब आपका ही प्रसाद है ।'

यह कहकर उसने श्रीरघुनाथजीकी परिक्रमा की और श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान्‌के चरणोंकी कृपासे ही वह उनके सनातन धामको चला गया । उस दिव्य पुरुषकी बातें सुनकर अन्य साधारण लोगोंको भी श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाका ज्ञान हुआ और वे सब-के-सब परस्पर आनन्दमग्न होकर बड़े विस्मयमें पड़े । महाबुद्धिमान् वात्स्यायनजी ! सुनिये; दम्भ-पूर्वक स्मरण करनेपर भी भगवान् श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं, फिर यदि दम्भ छोड़कर उनका भजन किया जाय तब तो कहना ही क्या है ? जैसे भी हो, श्रीरामचन्द्रजीका निरन्तर स्मरण करना चाहिये; जिससे उस परमपदकी प्राप्ति होती है, जो देवता आदिके लिये भी दुर्लभ है । अश्वकी मुक्तिरूप विचित्र व्यापार देखकर मुनियोंने अपनेको भी कृतार्थ समझा; क्योंकि वे स्वयं भी श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके दर्शन और करस्पर्शसे पवित्र हो रहे थे । तदनन्तर, मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी, जो सम्पूर्ण देवताओंका मनोभाव समझनेमें निपुण थे, बोले—'रघुनन्दन ! आप देवताओंको कर्पूर भेंट कीजिये, जिससे वे स्वयं प्रत्यक्ष प्रकट होकर हविष्य ग्रहण करेंगे ।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने देवताओंकी प्रसन्नताके लिये शीघ्र ही बहुत सुन्दर कर्पूर अर्पण किया । इससे महर्षि वसिष्ठके हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अद्भुतरूपधारी देवताओंका आवाहन किया । मुनिके आवाहन करनेपर एक ही क्षणमें सम्पूर्ण देवता अपने-अपने परिवारसहित वहाँ आ पहुँचे ।

शेषजी कहते हैं—मुने ! उस यज्ञमें दी जाने-वाली हवि श्रीरामचन्द्रजीकी दृष्टि पड़नेसे अत्यन्त पवित्र हो गयी थी । देवताओंसहित इन्द्र उसका आस्वादन करने लगे, उन्हें तृप्ति नहीं होती थी—अधिकाधिक लेनेकी इच्छा बनी रहती थी । नारायण, महादेव, ब्रह्मा, वरुण, कुबेर तथा अन्य लोकपाल सब-के-सब तृप्त हो अपना-अपना भाग लेकर अपने धामको चले गये । होताका कार्य करनेवाले जो प्रधान-प्रधान ऋषि थे, उन सबको भगवान्‌ने चारों दिशाओंमें राज्य दिया तथा उन्होंने भी सन्तुष्ट होकर श्रीरघुनाथजीको उत्तम आशीर्वाद दिये । तत्पश्चात् वसिष्ठजीने पूर्णाहुति करके कहा—'सौभाग्यवती स्त्रियाँ आकर यज्ञकी पूर्ति करनेवाले महाराजकी संवर्द्धना (अभ्युदय-कामना) करें ।' उनकी बात सुनकर स्त्रियाँ उठीं और बड़े-बड़े राजाओं-द्वारा पूजित श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर, जो अपने सौन्दर्यसे कामदेव-को भी परास्त कर रहे थे, अत्यन्त हर्षके साथ लाजा (खील) की वर्षा करने लगीं । इसके बाद महर्षिने श्रीरामचन्द्रजीको अवभृथ (यज्ञान्त) स्नानके लिये प्रेरित किया । तब श्रीरघुनाथजी आत्मीयजनोंके साथ सरयूके उत्तम तटपर गये । उस समय जो लोग सीतापतिके मुखचन्द्रका अवलोकन करते, वे एक-टक दृष्टिसे देखते ही रह जाते थे; उनकी आँखें स्थिर हो जाती थीं । जिनके हृदयमें चिरन्तन कालसे भगवान्‌के दर्शनकी लालसा लगी हुई थी, वे लोग महाराज श्रीरामको सीताके साथ सरयूकी ओर जाते देखकर आनन्दमें मग्न हो गये । अनेकों नट और गन्धर्व उज्ज्वल यशका गान करते हुए सर्वलोक-नमस्कृत महाराजके पीछे-पीछे गये । नदीका मार्ग झुंड-के-झुंड स्त्री-पुरुषोंसे भरा था । उसीसे चलकर वे शीतल एवं पवित्र जलसे परिपूर्ण सरयू नदीके समीप पहुँचे, वहाँ पहुँचकर कमलनयन श्रीरामने सीताके साथ सरयूके पावन जलमें प्रवेश किया । तत्पश्चात् भगवान्‌के चरणोंकी धूलिसे पवित्र हुए उस विश्ववन्दित जलमें सम्पूर्ण राजा तथा साधारण जन-समुदायके लोग भी उतरे । धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सरयूके पावन जलप्रवाहमें सीताके साथ चिरकालतक क्रीड़ा करके बाहर निकले । फिर उन्होंने धौत-वस्त्र धारण किया, किरीट और कुण्डल पहने तथा केयूर और कङ्कणकी शोभाको भी अपनाया । इस प्रकार वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित होकर करोड़ों कन्दर्पोंकी सुषमा धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त सुशोभित हुए । उस समय कितने ही राजे-महाराजे उनकी स्तुति करने लगे । महामना श्रीरघुनाथजीने सरयूके पावन तटपर उत्तम वर्णसे सुशोभित यज्ञयूपकी स्थापना करके अपनी भुजाओंके बलसे तीनों लोकोंकी अद्भुत सम्पत्ति प्राप्त की, जो दूसरे नरेशोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है । इस तरह भगवान् श्रीरामने जनकनन्दिनी सीताके साथ तीन अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया तथा त्रिभुवनमें अत्यन्त दुर्लभ और अनुपम कीर्ति प्राप्त की ।

वात्स्यायनजी ! आपने जो श्रीरामचन्द्रजीकी उत्तम कथाके विषयमें प्रश्न किया था, उसका उपर्युक्त प्रकारसे वर्णन किया गया । अश्वमेध यज्ञका वृत्तान्त मैंने विस्तारके साथ कहा है; अब आप और क्या पूछना चाहते हैं ? जो

मनुष्य भगवान्के प्रति भक्ति रखते हुए श्रीरामचन्द्रजीके इस उत्तम यज्ञका श्रवण करता है, वह ब्रह्महत्या-जैसे पापको भी क्षणभरमें पार करके सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है। इस कथाके सुननेसे पुत्रहीन पुरुषको पुत्रोंकी प्राप्ति होती है, धनहीनको धन मिलता है, रोगी रोगसे और कैदमें पड़ा हुआ मनुष्य बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। जिनकी कथा सुननेसे दुष्ट चाण्डाल भी परम पदको प्राप्त होता है, उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिमें यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रवृत्त हो तो उसके लिये क्या कहना! महाभाग श्रीरामका स्मरण करके पापी भी उस परम पद या परम स्वर्गको प्राप्त होते हैं, जो इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। संसारमें वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हैं! वे लोग क्षणभरमें इस संसार-समुद्रको पार करके अक्षय सुखको प्राप्त होते हैं। इस अश्वमेधकी कथाको सुनकर वाचकको दो गौ प्रदान करे तथा वस्त्र, अलङ्कार और भोजन आदिके द्वारा उसका तथा उसकी पत्नीका सत्कार करे। यह कथा ब्रह्महत्याकी राशिका विनाश करनेवाली है। जो लोग इसका श्रवण करते हैं, वे देवदुर्लभ परमपदको प्राप्त होते हैं।

वृन्दावन और श्रीकृष्णका माहात्म्य

ऋषियोंने कहा—सूतजी महाराज! हमने आपके मुखसे रामाश्वमेधकी कथा अच्छी तरह सुन ली; अब परमात्मा श्रीकृष्णके माहात्म्यका वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—महर्षियो! जिनका हृदय भगवान् शङ्करके प्रेममें डूबा रहता है, वे पार्वती देवी एक दिन अपने पतिको प्रेमपूर्वक नमस्कार करके इस प्रकार बोलीं—'प्रभो! वृन्दावनका माहात्म्य अथवा अद्भुत रहस्य क्या है, उसे मैं सुनना चाहती हूँ!'

महादेवजीने कहा—देवि! मैं यह बता चुका हूँ कि वृन्दावन ही भगवान्का सबसे प्रियतम धाम है। वह गुह्यसे भी गुह्य, उत्तमसे उत्तम और दुर्लभसे भी दुर्लभ है। तीनों लोकोंमें अत्यन्त गुप्तस्थान है। बड़े-बड़े देवेश्वर भी उसकी पूजा करते हैं। ब्रह्मा आदि भी उसमें रहनेकी इच्छा करते हैं। वहाँ देवता और सिद्धोंका निवास है। योगीन्द्र और मुनीन्द्र आदि भी सदा उसके ध्यानमें तत्पर रहते हैं। श्रीवृन्दावन बहुत ही सुन्दर और पूर्णानन्दमय रसका आश्रय है। वहाँकी भूमि चिन्तामणि है, और जल रससे भरा हुआ अमृत है। वहाँके पेड़ कल्पवृक्ष हैं, जिनके नीचे झुंड-की-झुंड कामधेनु गौएँ निवास करती हैं। वहाँकी प्रत्येक स्त्री लक्ष्मी और हरेक पुरुष विष्णु हैं; क्योंकि वे लक्ष्मी और विष्णुके दशांशसे प्रकट हुए हैं। उस वृन्दावनमें सदा श्याम तेज विराजमान रहता है, जिसकी नित्य-निरन्तर किशोरावस्था (पंद्रह वर्षकी उम्र) बनी रहती है। वह आनन्दका मूर्तिमान् विग्रह है। उसमें संगीत, नृत्य और वार्तालाप आदिकी अद्भुत योग्यता है। उसके मुखपर सदा मन्द मुसकानकी छटा छायी रहती है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, जो प्रेमसे परिपूर्ण हैं, ऐसे वैष्णवजन ही उस वनका आश्रय लेते हैं। वह वन पूर्ण ब्रह्मानन्दमें निमग्न है। वहाँ ब्रह्मके ही स्वरूपकी स्फुरणा होती है। वास्तवमें वह वन ब्रह्मानन्दमय ही है। वहाँ प्रतिदिन पूर्ण चन्द्रमाका उदय होता है। सूर्यदेव अपनी मन्द रश्मियोंके द्वारा उस वनकी सेवा करते हैं। वहाँ दुःखका नाम भी नहीं है। उसमें जाते ही सारे दुःखोंका नाश हो जाता है। वह जरा और मृत्युसे रहित स्थान है। वहाँ क्रोध और मत्सरताका प्रवेश नहीं है। भेद और अहङ्कारकी भी वहाँ पहुँच नहीं होती। वह पूर्ण

आनन्दमय अमृत-रससे भरा हुआ अखण्ड प्रेमसुखका समुद्र है, तीनों गुणोंसे परे है और महान् प्रेमधाम है। वहाँ प्रेमकी पूर्णरूपसे अभिव्यक्ति हुई है। जिस वृन्दावनके वृक्ष आदिने भी पुलकित होकर प्रेमजनित आनन्दके आँसू बरसाये हैं; वहाँके चेतन वैष्णवोंकी स्थितिके सम्बन्धमें क्या कहा जा सकता है ?

भगवान् श्रीकृष्णकी चरण-रजका स्पर्श होनेके कारण वृन्दावन इस भूतलपर नित्य धामके नामसे प्रसिद्ध है। वह सहस्रदल-कमलका केन्द्रस्थान है। उसके स्पर्शमात्रसे यह पृथ्वी तीनों लोकोंमे धन्य समझी जाती है। भूमण्डलमें वृन्दावन गुह्यसे भी गुह्यतम, रमणीय, अविनाशी तथा परमानन्दसे परिपूर्ण स्थान है। वह गोविन्दका अक्षयधाम है। उसे भगवान्‌के स्वरूपसे भिन्न नहीं समझना चाहिये। वह अखण्ड ब्रह्मानन्दका आश्रय है। जहाँकी धूलिका स्पर्श होने मात्रसे मोक्ष हो जाता है, उस वृन्दावनके माहात्म्यका किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है। इसलिये देवि ! तुम सम्पूर्ण चित्तसे अपने हृदयके भीतर उस वृन्दावनका चिन्तन करो तथा उसकी विहारस्थलियोंमें किशोरविग्रह श्रीकृष्णचन्द्र-का ध्यान करती रहो। पहले बता आये हैं कि वृन्दावन सहस्रदल-कमलका केन्द्रस्थान है। कलिन्द-कन्या यमुना उस कमल-कर्णिकाकी प्रदक्षिणा किया करती हैं। उनका जल अनायास ही मुक्ति प्रदान करनेवाला और गहरा है। वह अपनी सुगन्धसे मनुष्योंका मन मोह लेता है। उस जलमें आनन्ददायिनी सुधासे मिश्रित घनीभूत मकरन्द (रस) की प्रतिष्ठा है। पद्म और उत्पल आदि नाना प्रकारके पुष्पोंसे यमुनाका स्वच्छ सलिल अनेक रंगका दिखायी देता है। अपनी चञ्चल तरङ्गोंके कारण वह जल अत्यन्त मनोहर एवं रमणीय प्रतीत होता है।

पार्वतीजीने पूछा—दयानिधे ! भगवान् श्रीकृष्णका आश्चर्यमय सौन्दर्य और श्रीविग्रह कैसा है, मैं उसे सुनना चाहती हूँ; कृपया बतलाइये।

महादेवजीने कहा—देवि ! परम सुन्दर वृन्दावनके मध्यभागमें एक मनोहर भवनके भीतर अत्यन्त उज्ज्वल योग-पीठ है। उसके ऊपर माणिक्यका बना हुआ सुन्दर सिंहासन है, सिंहासनके ऊपर अष्टदल कमल है, जिसकी कर्णिका अर्थात् मध्यभागमें सुखदायी आसन लगा हुआ है; वहीं भगवान् श्रीकृष्णका उत्तम स्थान है। उसकी महिमाका क्या वर्णन किया जाय ? वहीं भगवान् गोविन्द विराजमान होते हैं। वैष्णववृन्द उनकी सेवामें लगा रहता है। भगवान्‌का व्रज, उनकी अवस्था और उनका रूप—ये सभी दिव्य हैं। श्रीकृष्ण ही वृन्दावनके अधीश्वर हैं, वे ही व्रजके राजा हैं। उनमें सदा षड्विध ऐश्वर्य विद्यमान रहते हैं। वे व्रजकी बालक-बालिकाओंके एकमात्र प्राण-वल्लभ हैं और किशोरा-वस्थाको पार करके यौवनमें पदार्पण कर रहे हैं। उनका शरीर अद्भुत है, वे सबके आदि कारण हैं, किन्तु उनका आदि कोई भी नहीं है। वे नन्दगोपके प्रिय पुत्ररूपसे प्रकट हुए हैं; परन्तु वास्तवमें अजन्मा एवं नित्य ब्रह्म हैं, जिन्हें वेदकी श्रुतियाँ सदा ही खोजती रहती हैं। उन्होंने गोपीजनों-का चित्त चुरा लिया है। वे ही परमधाम हैं। उनका स्वरूप सबसे उत्कृष्ट है। उनका श्रीविग्रह दो भुजाओंसे सुशोभित है। वे गोकुलके अधिपति हैं। ऐसे गोपीनन्दन श्रीकृष्ण-का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

भगवान्‌की कान्ति अत्यन्त सुन्दर और अवस्था नूतन है। वे बड़े स्वच्छ दिखायी देते हैं। उनके शरीरकी आभा श्याम रङ्गकी है, जिसके कारण उनकी झाँकी बड़ी मनोहर जान पड़ती है। उनका विग्रह नूतन मेघ-मालाके समान अत्यन्त स्निग्ध है। वे कानोंमें मनोहर कुण्डल धारण किये हुए हैं। उनकी कान्ति खिले हुए नील कमलके समान जान पड़ती है। उनका स्पर्श सुखद है। वे सबको सुख पहुँचानेवाले हैं। वे अपनी साँवली छटासे मनको मोहे लेते हैं। उनके केश बहुत ही चिकने, काले और घुँघराले हैं। उनसे सब प्रकारकी सुगन्ध निकलती रहती है। केशोंके ऊपर ललाटके दक्षिण-भागमें श्याम रङ्गकी चूड़ाके कारण वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। नाना रंगके आभूषण धारण करनेसे उनकी दीप्ति बड़ी उज्ज्वल दिखायी देती है। सुन्दर मोरपङ्ख उनके मस्तककी शोभा बढ़ाता है। उनकी सज-धज बड़ी सुन्दर है। वे कभी तो मन्दारपुष्पोंसे सुशोभित गोपुच्छके आकारकी बनी हुई चूड़ा (चोटी) धारण करते हैं, कभी मोरपङ्खके मुकुटसे अलङ्कृत होते हैं और कभी अनेकों मणि-माणिक्योंके बने-हुए सुन्दर किरीटोंसे विभूषित होते हैं। चञ्चल अलकावली उनके मस्तककी शोभा बढ़ाती है। उनका मनोहर मुख करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमान् है। ललाटमें कस्तूरीका तिलक

है, साथ ही सुन्दर गोरोचनकी बिंदी भी शोभा दे रही है। उनका शरीर इन्दीवरके समान स्निग्ध और नेत्र कमल-दलकी भाँति विशाल हैं। वे कुछ-कुछ भौंहें नचाते हुए मन्द मुसकानके साथ तिरछी चितवनसे देखा करते हैं। उनकी नासिकाका अग्रभाग रमणीय सौन्दर्यसे युक्त है, जिसके कारण वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं। उन्होंने नासाग्रभागमें गज-मोती धारण करके उसकी कान्तिसे त्रिभुवनका मन मोह लिया है। उनका नीचेका ओठ सिन्दूरके समान लाल और चिकना है; जिससे उनकी मनोहरता और भी बढ़ गयी है। वे अपने कानोंमें नाना प्रकारके वर्णोंसे सुशोभित सुवर्णनिर्मित मकराकृत कुण्डल पहने हुए हैं। उन कुण्डलोंकी किरण पड़नेसे उनका सुन्दर कपोल दर्पणके समान शोभा पा रहा है। वे कानोंमें पहने हुए कमल, मन्दारपुष्प और मकराकार कुण्डलसे विभूषित हैं। उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि और श्रीवत्सचिह्न शोभा पा रहे हैं। गलेमें मोतियोंका हार चमक रहा है। उनके विभिन्न अङ्गोंमें दिव्य माणिक्य तथा मनोहर सुवर्णमिश्रित आभूषण सुशोभित हैं। हाथोंमें कड़े, भुजाओंमें बाजूबन्द तथा कमरमें करधनी शोभा दे रही है। सुन्दर मञ्जीरकी सुषमासे चरणोंकी श्री बहुत बढ़ गयी है, जिससे भगवान्का श्रीविग्रह अत्यन्त शोभायमान दिखायी दे रहा है। श्रीअङ्गोंमें कर्पूर, अगर, कस्तूरी और चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्य शोभा पा रहे हैं। गोरोचन आदिसे मिश्रित दिव्य अङ्गरागोंद्वारा विचित्र पत्र-भङ्गी(रंग-बिरंगे चित्र)आदिकी रचना की गयी है। कटिसे लेकर पैरोंके अग्रभागतक चिकने पीताम्बरसे शोभायमान हैं। भगवान्का नाभि-कमल गम्भीर है, उसके नीचेकी रोमावलियोंतक माला लटक रही है। उनके दोनों घुटने सुन्दर गोलाकार हैं तथा कमलोंकी शोभा धारण करनेवाले चरण बड़े मनोहर जान पड़ते हैं। हाथ और पैरोंके तलुवे ध्वज, वज्र, अङ्कुश और कमलके चिह्नसे सुशोभित हैं तथा उनके ऊपर नखरूपी चन्द्रमाकी किरणावलियोंका प्रकाश पड़ रहा है। सनक-सनन्दन आदि योगीश्वर अपने हृदयमें भगवान्के इसी स्वरूपकी झाँकी करते हैं। उनकी त्रिभङ्गी छवि है। उनके श्रीअङ्ग इतने सुन्दर, इतने मनोहर हैं, मानो सृष्टिकी समस्त निर्माण-सामग्रीका सार निकालकर बनाये गये हों। जिस समय वे गर्दन मोड़कर खड़े होते हैं, उस समय उनका सौन्दर्य इतना बढ़ जाता है कि उसके सामने अनन्त-कोटि कामदेव लज्जित होने लगते हैं। बायें कंधेपर झुका हुआ उनका सुन्दर कपोल बड़ा भला मालूम होता है। उनके सुवर्णमय कुण्डल जगमगाते रहते हैं। वे तिरछी चितवन और मंद मुसकानसे सुशोभित होनेवाले करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक सुन्दर हैं। सिकोड़े हुए ओठपर वंशी रखकर बजाते हैं और उसकी मीठी तानसे त्रिभुवनको मोहित करते हुए सबको प्रेम-सुधाके समुद्रमें निमग्न कर रहे हैं।

पार्वतीजीने कहा—देवदेवेश्वर ! आपके उपदेशसे यह ज्ञात हुआ कि गोविन्द नामसे प्रसिद्ध भगवान् श्रीकृष्ण ही इस जगत्के परम कारण हैं। वे ही परमपद हैं; वृन्दावनके अधीश्वर हैं तथा नित्य परमात्मा हैं। प्रभो ! अब मैं यह सुनना चाहती हूँ कि श्रीकृष्णका गूढ रहस्य, माहात्म्य और सुन्दर ऐश्वर्य क्या है; आप उसका वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि ! जिनके चन्द्र-तुल्य चरण-नखोंकी किरणोंके माहात्म्यका भी अन्त नहीं है, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाके सम्बन्धमें मैं कुछ बातें बता रहा हूँ, तुम आनन्दपूर्वक श्रवण करो। सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिसे युक्त, जो ब्रह्मा आदि देवता हैं, वे सब श्रीकृष्णके ही वैभव हैं। उनके रूपका जो करोड़वाँ अंश है, उसके भी करोड़ अंश करनेपर एक-एक अंश-कलासे असंख्य कामदेवोंकी उत्पत्ति होती है, जो इस ब्रह्माण्डके भीतर व्याप्त होकर जगत्के जीवोंको मोहमें डालते रहते हैं। भगवान्के श्रीविग्रहकी शोभामयी कान्तिके कोटि-कोटि अंशसे चन्द्रमाका आविर्भाव हुआ है। श्रीकृष्णके प्रकाशके करोड़वें अंशसे जो किरणें निकलती हैं, वे ही अनेकों सूर्योंके रूपमें प्रकट होती हैं। उनके साक्षात् श्रीअङ्गसे जो रश्मियाँ प्रकट होती हैं, वे परमानन्दमय रसामृतसे परिपूर्ण हैं, परम आनन्द और परम चैतन्य ही उनका स्वरूप है। उन्हींसे इस विश्वके ज्योतिर्मय जीव जीवन धारण करते हैं, जो भगवान्के ही कोटि-कोटि अंश हैं। उनके युगल चरणारविन्दोंके नखरूपी चन्द्रकान्तमणिसे निकलनेवाली प्रभाको ही सबका कारण बताया गया है। वह कारण-तत्त्व वेदोंके लिये भी दुर्गम्य है। विश्वको विमुग्ध करनेवाले जो नाना प्रकारके सौरभ (सुगन्ध) हैं, वे सब भगवद्विग्रहकी दिव्य सुगन्धके अनन्तकोटि अंशमात्र हैं। भगवान्के स्पर्शसे ही पुष्पगन्ध आदि नाना सौरभोंका प्रादुर्भाव होता है। श्रीकृष्ण-की प्रियतमा—उनकी प्राणवल्लभा श्रीराधा हैं, वे ही आद्या प्रकृति कही गयी हैं।

श्रीराधा-कृष्ण और उनके पार्षदोंका वर्णन तथा नारदजीके द्वारा व्रजमें अवतीर्ण श्रीकृष्ण और राधाके दर्शन

पार्वती बोलीं—दयानिधे ! अब, भगवान् श्रीकृष्णके जो पार्षद हैं, उनका वर्णन सुननेकी इच्छा हो रही है; अतः बतलाइये ।

महादेवजीने कहा—देवि ! भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ सुवर्णमय सिंहासनपर विराजमान है । उनका रूप और लावण्य वैसा ही है, जैसा कि पहले बताया गया है । वे दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण और दिव्य हारसे विभूषित हैं । उनकी त्रिभङ्गी छवि बड़ी मनोहर जान पड़ती है । उनका स्वरूप अत्यन्त स्निग्ध है । वे गोपियोंकी आँखोंके तारे हैं । उपर्युक्त सिंहासनसे पृथक् एक योगपीठ है । वह भी सोनेके सिंहासनसे आवृत है । उसके ऊपर ललिता आदि प्रधान-प्रधान सखियाँ, जो श्रीकृष्णको बहुत ही प्रिय हैं, विराजमान होती हैं । उनका प्रत्येक अङ्ग भगवन्मिलनकी उत्कण्ठा तथा रसावेशसे युक्त होता है । ये ललिता आदि सखियाँ प्रकृतिकी अंशभूता हैं । श्रीराधिका ही इनकी मूल-प्रकृति हैं । श्रीराधा और श्रीकृष्ण पश्चिमाभिमुख विराजमान हैं, उनकी पश्चिम दिशामें ललितादेवी विद्यमान हैं, वायव्य-कोणमें श्यामला नामवाली सखी हैं । उत्तरमें श्रीमती धन्या हैं । ईशानकोणमें श्रीहरिप्रियाजी विराज रही हैं । पूर्वमें विशाखा, अग्निकोणमें शैव्या, दक्षिणमें पद्मा तथा नैर्ऋत्य-कोणमें भद्रा हैं । इसी क्रमसे ये आठों सखियाँ योगपीठपर विराजमान हैं । योगपीठकी कर्णिकामें परमसुन्दरी चन्द्रावली-की स्थिति है—वे भी श्रीकृष्णकी प्रिया हैं । उपर्युक्त आठ सखियाँ श्रीकृष्णको प्रिय लगनेवाली परमपवित्र आठ प्रधान प्रकृतियाँ हैं । वृन्दावनकी अधीश्वरी श्रीराधा तथा चन्द्रावली दोनों ही भगवान्‌की प्रियतमा हैं । इन दोनोंके आगे चलनेवाली हजारों गोपकन्याएँ हैं, जो गुण, लावण्य और सौन्दर्यमें एक समान हैं । उन सबके नेत्र विस्मयकारी गुणोंसे युक्त हैं । वे बड़ी मनोहर हैं । उनका वेष मनको मुग्ध कर लेनेवाला है । वे सभी किशोर-अवस्था (पंद्रह वर्षकी उम्र) वाली हैं । उन सबकी कान्ति उज्ज्वल है । वे सब-की-सब श्याममय अमृतरस-में निमग्न रहती हैं । उनके हृदयमें श्रीकृष्णके ही भाव स्फुरित होते हैं । वे अपने कमलवत् नेत्रोंके द्वारा पूजित श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें अपना-अपना चित्त समर्पित कर चुकी हैं ।

श्रीराधा और चन्द्रावलीके दक्षिण भागमें श्रुतिकन्याएँ रहती हैं [वेदकी श्रुतियाँ ही इन कन्याओंके रूपमें प्रकट हुई हैं] इनकी संख्या सहस्र अयुत (एक करोड़) है । इनकी मनोहर आकृति संसारको मोहित कर लेनेवाली है । इनके हृदयमें केवल श्रीकृष्णकी लालसा है । ये नाना प्रकारके मधुर स्वर और आलाप आदिके द्वारा त्रिभुवनको मुग्ध करनेकी शक्ति रखती हैं तथा प्रेमसे विह्वल होकर श्रीकृष्णके गूढ़ रहस्योंका गान किया करती हैं । इसी प्रकार श्रीराधा आदिके वामभागमें दिव्यवेषधारिणी देवकन्याएँ रहती हैं, जो रसातिरेकके कारण अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत होती हैं । वे भाँति-भाँतिकी प्रणय-चातुरीमें निपुण तथा दिव्य भावसे परिपूर्ण हैं । उनका सौन्दर्य चरम सीमाको पहुँचा हुआ है । वे कटाक्षपूर्ण चितवनके कारण अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं । उनके मनमें श्रीकृष्णके प्रति तनिक भी संकोच नहीं है; उनके अङ्गोंका स्पर्श प्राप्त करनेके लिये सदा उत्कण्ठित रहती हैं । उनका हृदय निरन्तर श्रीकृष्णके ही चिन्तनमें मग्न रहता है । वे भगवान्‌की ओर मंद-मंद मुसकाती हुई तिरछी चितवनसे निहारा करती हैं ।

तदनन्तर, मन्दिरके बाहर गोपगण स्थित होते हैं, वे भगवान्‌के प्रिय सखा हैं । उन सबके वेष, अवस्था, बल, पौरुष, गुण, कर्म तथा वस्त्राभूषण आदि एक समान हैं । वे एक समान स्वरसे गाते हुए वेणु बजाया करते हैं । मन्दिरके पश्चिम द्वारपर श्रीदामा, उत्तरमें वसुदामा, पूर्वमें सुदामा तथा दक्षिण द्वारपर किङ्किणीका निवास है । उस स्थानसे पृथक् एक सुवर्णमय मन्दिरके भीतर सुवर्णवेदी बनी हुई है । उसके ऊपर सोनेके आभूषणोंसे विभूषित सुवर्णपीठ है, जिसके ऊपर अंशुभद्र आदि हजारों ग्वालबाल विराजते हैं । वे सब-के-सब एक समान सींग, वीणा, वेणु, बेंतकी छड़ी, किशोरावस्था, मनोहर वेष, सुन्दर आकार तथा मधुर स्वर धारण करते हैं । वे भगवान्‌के गुणोंका चिन्तन करते हुए उनका गान करते हैं तथा भगवत्-प्रेममय रससे विह्वल रहते हैं । ध्यानमें स्थिर होनेके कारण वे चित्र-लिखित-से जान पड़ते हैं । उनका रूप आश्चर्यजनक सौन्दर्यसे युक्त होता है । वे सदा आनन्दके आँसू बहाया करते हैं । उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च छाया रहता है तथा वे योगीश्वरोंकी भाँति सदा

विस्मयविमुग्ध रहते हैं। अपने थनोंसे दूध बहानेवाली असंख्य गौएँ उन्हें घेरे रहती हैं। वहाँसे बाहरके भागमें एक सोनेकी चहारदिवारी है, जो करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान दिखायी देती है। उसके चारों ओर बड़े-बड़े उद्यान हैं, जिनकी मनोहर सुगन्ध सब ओर फैली रहती है।

जो मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सदा पवित्र भावसे श्रीकृष्णचरित्रका भक्तिपूर्वक पाठ या श्रवण करता है, उसे भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है।

पार्वतीजीने पूछा--भगवन्! अत्यन्त मोहक रूप धारण करनेवाले श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ किन-किन विशेषताओंके कारण क्रीड़ा की, इस रहस्यका मुझसे वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि! एक समयकी बात है, मुनिश्रेष्ठ नारद यह जानकर कि श्रीकृष्णका प्राकट्य हो चुका है, वीणा बजाते हुए नन्दजीके गोकुलमें पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा महायोगमायाके स्वामी सर्वव्यापी भगवान् अच्युत बालकका स्वाँग धारण किये नन्दजीके घरमें कोमल बिछौनोंसे युक्त सोनेके पलंगपर सो रहे हैं और गोपकन्याएँ बड़ी प्रसन्नताके साथ निरन्तर उनकी ओर निहार रही हैं।

भगवान्का श्रीविग्रह अत्यन्त सुकुमार था। उनके काले-काले घुँघराले बाल सब ओर बिखरे हुए थे। किञ्चित्-किञ्चित् मुसकराहटके कारण उनके दो-एक दाँत दिखायी दे जाते थे। वे अपनी प्रभासे समूचे घरके भीतरी भागमें प्रकाश फैला रहे थे। नग्न शिशुके रूपमें भगवान्की झाँकी करके नारदजीको बड़ा हर्ष हुआ। वे भगवान्के प्रिय भक्त तो थे ही, गोपति नन्दजीसे बातचीत करके सब बातें बताने लगे, 'नन्दरायजी! भगवान्के भक्तोंका जीवन अत्यन्त दुर्लभ होता है। आपके इस बालकका प्रभाव अनुपम है, इसे कोई नहीं जानता। शिव और ब्रह्मा आदि देवता भी इसके प्रति सनातन प्रेम चाहते हैं। इस बालकका चरित्र सबको हर्ष प्रदान करनेवाला होगा। भगवद्भक्त पुरुष इस बालककी लीलाओंका श्रवण, गायन और अभिनन्दन करते हैं। आपके पुत्रका प्रभाव अचिन्त्य है। जिनका इसके प्रति हार्दिक प्रेम होगा, वे संसार-समुद्रसे तर जायँगे। उन्हें इस जगत्की कोई बाधा नहीं सतायेगी; अतः नन्दजी! आप भी इस बालकके प्रति निरन्तर अनन्य भावसे प्रेम कीजिये।'

यों कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी नन्दके घरसे निकले। नन्दने भी भगवद्बुद्धिसे उनका जन किया और प्रणाम करके उन्हें विदा दी। तदनन्तर वे महाभागवत मुनि मन-ही-मन सोचने लगे, 'जब भगवान्का अवतार हो चुका है, तो उनकी परम प्रियतमा भगवती भी अवश्य अवतीर्ण हुई होंगी। वे भगवान्की क्रीड़ाके लिये गोपी रूप धारण करके निश्चय ही प्रकट हुई होंगी, इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है; इसलिये अब मैं व्रजवासियोंके घर-घरमें घूमकर उनका पता लगाऊँगा।' ऐसा विचारकर मुनिवर नारदजी व्रजवासियोंके घरोंमें अतिथिरूपसे जाने और उनके द्वारा विष्णु-बुद्धिसे पूजित होने लगे। नन्द-कुमार श्रीकृष्णमें समस्त गोप-गोपियोंका प्रगाढ़ प्रेम देखकर नारदजीने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया।

तदनन्तर, बुद्धिमान् नारदजी किसी श्रेष्ठ गोपके विशाल भवनमें गये। वह नन्दके सखा महात्मा भानुका घर था। वहाँ जानेपर भानुने नारदजीका विधिवत् सत्कार किया। तत्पश्चात्

महामना नारदजीने पूछा—'साधो ! तुम अपनी धर्मनिष्ठताके लिये इस भूमण्डलपर विख्यात हो, बताओ, क्या तुम्हें कोई योग्य पुत्र अथवा उत्तम लक्षणोंवाली कन्या है ?' मुनिके ऐसा कहनेपर भानुने अपने पुत्रको लाकर दिखाया । उसे देखकर नारदजीने कहा—'तुम्हारा यह पुत्र बलराम और श्रीकृष्णका

श्रेष्ठ सखा होगा तथा आलस्यरहित होकर सदा उन दोनोंके साथ विहार करेगा ।'

भानुने कहा—मुनिवर ! मेरे एक पुत्री भी है, जो इस बालककी छोटी बहिन् है, कृपया उसपर भी दृष्टिपात कीजिये ।

यह सुनकर नारदजीके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ । उन्होंने घरके भीतर प्रवेश करके देखा, भानुकी कन्या धरतीपर लोट रही है । नारदजीने उसे अपनी गोदमें उठा लिया । उस समय उनका चित्त अत्यधिक स्नेहके कारण विह्वल हो रहा था । महामुनि नारद भगवत्प्रेमके साक्षात् स्वरूप हैं। बालरूप श्रीकृष्णको देखकर उनकी जो अवस्था हुई थी, वही इस कन्याको भी देखकर हुई । उनका मन मुग्ध हो गया । वे एकमात्र रसके आश्रयभूत परमानन्दके समुद्रमें डूब गये । चार घड़ीतक नारदजी पत्थरकी भाँति निश्चेष्ट बैठे रहे । उसके बाद उन्हें चेत हुआ । फिर मुनीश्वरने धीरे-धीरे अपने दोनों नेत्र खोले और महान् आश्चर्यमें मग्न होकर वे चुपचाप स्थित हो गये । तत्पश्चात् वे महाबुद्धिमान् महर्षि मन-ही-मन इस प्रकार सोचने लगे—'मैं सदा स्वच्छन्द विचरनेवाला हूँ, मैंने सभी लोकोंमें भ्रमण किया है, परन्तु रूपमें इस बालिकाकी समानता करनेवाली स्त्री कहीं नहीं देखी है । महामायास्वरूपिणी गिरिराज-कुमारी भगवती उमाको भी देखा है, किन्तु वे भी इस बालिकाकी शोभाको कदापि नहीं पा सकतीं । लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति तथा विद्या आदि सुन्दरी स्त्रियाँ तो कभी इसके सौन्दर्यकी छायाका भी स्पर्श करती नहीं दिखायी देतीं; अतः मुझमें इसके तत्त्वको समझनेकी किसी प्रकार शक्ति नहीं है । यह भगवान्‌की प्रियतमा है, इसे प्रायः दूसरे लोग भी नहीं जानते । इसके दर्शन मात्रसे ही श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें मेरे प्रेमकी जैसी वृद्धि हुई है, वैसी आजके पहले कभी भी नहीं हुई थी; अतः अब मैं एकान्तमें इस देवीकी स्तुति करूँगा । इसका रूप श्रीकृष्णको अत्यन्त आनन्द प्रदान करनेवाला होगा ।'

ऐसा विचारकर मुनिने गोप-प्रवर भानुको कहीं भेज

दिया और स्वयं एकान्तमें उस दिव्य रूपधारिणी बालिकाकी स्तुति करने लगे—'देवि ! तुम महायोगमयी हो, मायाकी अधीश्वरी हो। तुम्हारा तेजःपुञ्ज महान् है। तुम्हारे दिव्याङ्ग मनको अत्यन्त मोहित करनेवाले हैं। तुम महान् माधुर्यकी वर्षा करनेवाली हो। तुम्हारा हृदय अत्यन्त अद्भुत रसानुभूतिजनित आनन्दसे शिथिल रहता है। मेरा कोई महान् सौभाग्य था, जिससे तुम मेरे नेत्रोंके समक्ष प्रकट हुई हो। देवि ! तुम्हारी दृष्टि सदा आन्तरिक सुखमें निमग्न दिखायी देती है। तुम भीतर-ही-भीतर किसी महान् आनन्दसे परितृप्त जान पड़ती हो। तुम्हारा यह प्रसन्न, मधुर एवं शान्त मुखमण्डल तुम्हारे अन्तःकरणमें किसी परम आश्चर्यमय आनन्दके उद्रेककी सूचना दे रहा है। सृष्टि, स्थिति और संहार—तुम्हारे ही स्वरूप हैं, तुम्हीं इनका अधिष्ठान हो। तुम्हीं विशुद्ध सत्त्वमयी हो तथा तुम्हीं पराविद्यारूपिणी उत्तम शक्ति हो। तुम्हारा वैभव आश्चर्यमय है। ब्रह्मा और रुद्र आदिके लिये भी तुम्हारे तत्त्वको बोध होना कठिन है। बड़े-बड़े योगीश्वरोंके ध्यानमें भी तुम कभी नहीं आतीं। तुम्हीं सबकी अधीश्वरी हो। इच्छा-शक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रिया-शक्ति—ये सब तुम्हारे अंशमात्र हैं। ऐसी ही मेरी धारणा है—मेरी बुद्धिमें यही बात आती है। मायासे बालकरूप धारण करनेवाले परमेश्वर महाविष्णुकी जो मायामयी अचिन्त्य विभूतियाँ हैं, वे सब तुम्हारी अंशभूता हैं। तुम आनन्दरूपिणी शक्ति और सबकी ईश्वरी हो; इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं है। निश्चय ही, भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावनमें तुम्हारे ही साथ क्रीडा करते हैं। कुमारावस्थामें भी तुम अपने रूपसे विश्वको मोहित करनेकी शक्ति रखती हो। तुम्हारा जो स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय है, मैं उसका दर्शन करना चाहता हूँ। महेश्वरि ! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ, चरणोंमें पड़ा हूँ; मुझपर दया करके इस समय अपना वह मनोहर रूप प्रकट करो, जिसे देखकर नन्दनन्दन श्रीकृष्ण भी मोहित हो जायँगे।'

यों कहकर देवर्षि नारदजी श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए इस प्रकार उनके गुणोंका गान करने लगे—'भक्तोंके चित्त चुरानेवाले श्रीकृष्ण ! तुम्हारी जय हो; वृन्दावनके प्रेमी गोविन्द ! तुम्हारी जय हो। बाँकी भौंहोंके कारण अत्यन्त सुन्दर, वंशी बजानेमें व्यग्र, मोरपंखका मुकुट धारण करनेवाले गोपीमोहन ! तुम्हारी जय हो, जय हो। अपने श्रीअङ्गोंमें कुङ्कुम लगाकर रत्नमय आभूषण धारण करनेवाले नन्दनन्दन ! तुम्हारी जय हो, जय हो। अपने किशोर-स्वरूपसे प्रेमीजनोंका मन मोहनेवाले जगदीश्वर ! वह दिन कब आयगा, जब कि मैं तुम्हारी ही कृपासे तुम्हें अभिनव तरुणावस्थाके कारण अङ्ग-अङ्गमें मनोहरण शोभा धारण करनेवाली इस दिव्यरूपा बालिकाके साथ देखूँगा।'

नारदजी जब इस प्रकार कीर्तन कर रहे थे, उसी समय वह बालिका क्षणभरमें अत्यन्त मनोहर दिव्यरूप धारण करके पुनः उनके सामने प्रकट हुई। वह रूप चौदह वर्षकी अवस्थाके अनुरूप और सौन्दर्यकी चरम सीमाको पहुँचा हुआ था। तत्काल ही उसीके समान अवस्थावाली दूसरी व्रज-बालाएँ भी दिव्य वस्त्र, आभूषण और मालाओंसे सुसज्जित हो वहाँ आ पहुँचीं तथा भानुकुमारीको सब ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। मुनीश्वर नारदजीकी स्तवन-शक्तिने जवाब दे दिया। वे आश्चर्यसे मोहित हो गये, तब उन व्रज-

बालाओंने कृपापूर्वक अपनी सखीका चरणोदक लेकर मुनिके ऊपर छींटा दिया। इस प्रकार जब वे होशमें आये तो बालिकाओंने कहा—'मुनिश्रेष्ठ! तुम बड़े भाग्यशाली हो, महान् योगेश्वरोंके भी ईश्वर हो। तुम्हींने पराभक्तिके साथ सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिकी आराधना की है। भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले भगवान्‌की उपासना वास्तवमें तुम्हारे ही द्वारा हुई है। यही कारण है कि ब्रह्मा और रुद्र आदि देवता, सिद्ध, मुनीश्वर तथा अन्य भगवद्भक्तोंके लिये भी जिसे देखना और जानना कठिन है, वही अपनी अद्भुत अवस्था और रूपसे सबको मोहित करनेवाली यह श्रीकृष्णकी प्रियतमा हमारी सखी आज तुम्हारे समक्ष प्रकट हुई है। निश्चय ही यह तुम्हारे किसी अचिन्त्य सौभाग्यका प्रभाव है। ब्रह्मर्षे! धैर्य धारण करके शीघ्र ही उठो, खड़े हो जाओ और इस देवीकी प्रदक्षिणा करो; इसके चरणोंमें बारंबार मस्तक झुका लो। फिर समय नहीं मिलेगा, यह अभी इसी क्षण अन्तर्धान हो जायगी। अब इसके साथ तुम्हारी बात-चीत किसी तरह नहीं हो सकेगी।'
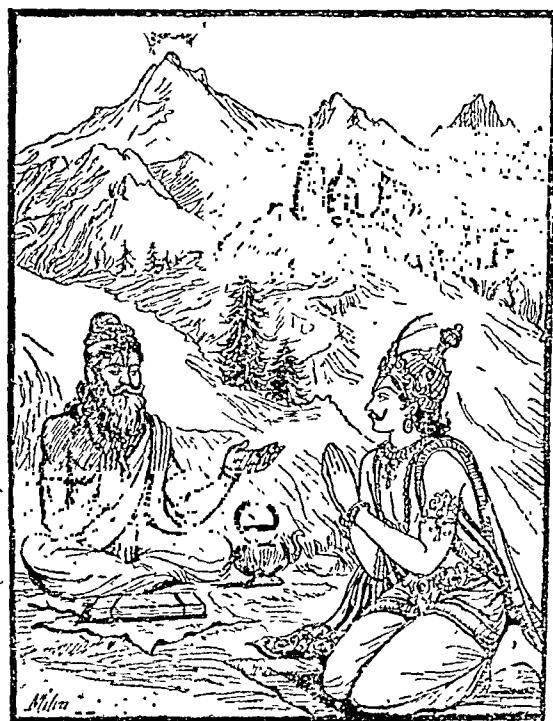
व्रज-बालाओंका चित्त स्नेहसे विह्वल हो रहा था। उनकी बातें सुनकर नारदजी नाना प्रकारके वेष-विन्याससे शोभा पानेवाली उस दिव्य बालाके चरणोंमें दो मुहूर्ततक पड़े रहे। तदनन्तर उन्होंने भानुको बुलाकर उस सर्व-शोभा-सम्पन्न कन्याके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा—'गोपश्रेष्ठ! तुम्हारी इस कन्याका स्वरूप और स्वभाव दिव्य है। देवता भी इसे अपने वशमें नहीं कर सकते। जो घर इसके चरण-चिह्नोंसे विभूषित होगा, वहाँ भगवान् नारायण सम्पूर्ण देवताओंके साथ निवास करेंगे और भगवती लक्ष्मी भी सब प्रकारकी सिद्धियोंके साथ वहाँ मौजूद रहेंगी। अब तुम सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित इस सुन्दरी कन्याको परा देवीकी भाँति समझकर इसकी अपने घरमें यत्नपूर्वक रक्षा करो।'

ऐसा कहकर भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीने मन-ही-मन उस देवीको प्रणाम किया और उसीके स्वरूपका चिन्तन करते हुए वे गहन वनके भीतर चले गये।

भगवान्‌के परात्पर स्वरूप—श्रीकृष्णकी महिमा तथा मथुराके माहात्म्यका वर्णन

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि! महर्षि वेदव्यासने विष्णुभक्त महाराज अम्बरीषसे जिस रहस्यका वर्णन किया था, वही मैं तुम्हें भी बतला रहा हूँ। एक समयकी बात है, राजा अम्बरीष बदरिकाश्रममें गये। वहाँ परम जितेन्द्रिय महर्षि वेदव्यास विराजमान थे। राजाने विष्णु-धर्मको जाननेकी इच्छासे महर्षिको प्रणाम करके उनका स्तवन करते हुए कहा—'भगवन्! आप विषयोंसे विरक्त हैं। मैं आपको बारंबार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! जो परमपद, उद्वेगशून्य—शान्त है, जो सच्चिदानन्दस्वरूप और परब्रह्मके नामसे प्रसिद्ध है, जिसे 'परम आकाश' कहा गया है, जो इस भौतिक जड आकाशसे सर्वथा विलक्षण है, जहाँ किसी रोग-व्याधिका प्रवेश नहीं है तथा जिसका साक्षात्कार करके मुनिगण भव-सागरसे पार हो जाते हैं, उस अव्यक्त परमात्मामें मेरे मनकी नित्य स्थिति कैसे हो?'

वेदव्यासजी बोले—राजन्! तुमने अत्यन्त गोपनीय प्रश्न किया है, जिस आत्मानन्दके विषयमें मैंने अपने पुत्र शुकदेवको भी कुछ नहीं बतलाया था, वही आज तुमको बता रहा हूँ; क्योंकि तुम भगवान्‌के प्रिय भक्त हो। पूर्वकालमें यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड जिसके रूपमें स्थित रहकर अव्यक्त और अविकारी स्वरूपसे प्रतिष्ठित था, उसी परमेश्वरके रहस्य-का वर्णन किया जाता है, सुनो—प्राचीन समयमें मैंने फल, मूल, पत्र, जल, वायुका आहार करके कई हजार वर्षोंतक भारी तपस्या की। इससे भगवान् मुझपर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने ध्यानमें लगे रहनेवाले मुझ भक्तसे कहा—'महामते! तुम कौन-सा कार्य करना अथवा किस विषयको जानना चाहते हो? मैं प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे कोई वर माँगो। संसारका बन्धन तभीतक रहता है, जबतक कि मेरा साक्षात्कार नहीं हो जाता; यह मैं तुमसे सच्ची बात बता रहा हूँ।' यह सुनकर मेरे शरीरमें रोमाञ्च हो आया; मैंने श्रीकृष्णसे कहा—'मधुसूदन! मैं आपहीके तत्त्वका यथार्थरूपसे साक्षात्कार करना चाहता हूँ। नाथ! जो इस जगत्‌का पालक और प्रकाशक है; उपनिषदोंमें जिसे सत्यस्वरूप परब्रह्म बतलाया गया है; आप-का वही अद्भुत रूप मेरे समक्ष प्रकट हो—यही मेरी प्रार्थना है।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—महर्षे! [मेरे विषयमें लोगोंकी भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं] कोई मुझे 'प्रकृति' कहते हैं, कोई पुरुष। कोई ईश्वर मानते हैं, कोई धर्म। किन्हीं-किन्हींके मतमें मैं सर्वथा भयरहित मोक्षस्वरूप हूँ। कोई भाव (सत्तास्वरूप) मानते हैं और कोई-कोई कल्याण-मय सदाशिव बतलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे लोग मुझे वेदान्तप्रतिपादित अद्वितीय सनातन ब्रह्म मानते हैं। किन्तु वास्तवमें जो सत्तास्वरूप और निर्विकार है, सत्-चित् और आनन्द ही जिसका विग्रह है तथा वेदोंमें जिसका रहस्य छिपा हुआ है, अपना वह पारमार्थिक स्वरूप आज तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ, देखो।

राजन्! भगवान्‌के इतना कहते ही मुझे एक बालकका दर्शन हुआ, जिसके शरीरकी कान्ति नील मेघके समान श्याम थी। वह गोपकन्याओं और ग्वाल-बालोंसे घिरकर हँस रहा था। वे भगवान् श्यामसुन्दर थे, जो पीत वस्त्र धारण किये कदम्बकी जड़पर बैठे हुए थे। उनकी झाँकी अद्भुत

थी। उनके साथ ही नूतन पल्लवोंसे अलङ्कृत 'वृन्दावन' नाम-वाला वन भी दृष्टिगोचर हुआ। इसके बाद मैंने नील कमल-की आभा धारण करनेवाली कलिन्दकन्या यमुनाके दर्शन किये। फिर गोवर्धन-पर्वतपर दृष्टि पड़ी, जिसे श्रीकृष्ण तथा बलरामने इन्द्रका घमंड चूर्ण करनेके लिये अपने हाथोंपर उठाया था। वह पर्वत गौओं तथा गोपोंको बहुत सुख देनेवाला है। गोपाल श्रीकृष्ण अबलाओंके साथ बैठकर बड़ी प्रसन्नताके साथ वेणु बजा रहे थे, उनके शरीरपर सब प्रकारके आभूषण शोभा पा रहे थे। उनका दर्शन करके मुझे बड़ा हर्ष हुआ। तब वृन्दावनमें विचरनेवाले भगवान्‌ने स्वयं मुझसे कहा—'मुने! तुमने जो इस दिव्य सनातनरूपका दर्शन किया है, यही मेरा निष्कल, निष्क्रिय, शान्त और सच्चिदानन्दमय पूर्ण विग्रह है। इस कमललोचनस्वरूपसे बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट तत्त्व नहीं है। वेद इसी स्वरूपका वर्णन करते हैं। यही कारणोंका भी कारण है। यही सत्य, परमानन्दस्वरूप, चिदानन्दघन, सनातन और शिवतत्त्व है।

तुम मेरी इस मथुरापुरीको नित्य समझो । यह वृन्दावन, यह यमुना, ये गोपकन्याएँ तथा ग्वाल-बाल सभी नित्य हैं । यहाँ जो मेरा अवतार हुआ है, यह भी नित्य है । इसमें संशय न करना । राधा मेरी सदाकी प्रियतमा हैं । मैं सर्वज्ञ, परात्पर, सर्वकाम, सर्वेश्वर तथा सर्वानन्दमय परमेश्वर हूँ । मुझमें ही यह सारा विश्व, जो मायाका विलासमात्र है, प्रतीत हो रहा है ।'

तब मैंने जगत्के कारणोंके भी कारण भगवान्से कहा—'नाथ ! ये गोपियाँ और ग्वाल कौन हैं ? तथा यह वृक्ष कैसा है ?' तब वे बड़े प्रेमसे बोले—'मुने ! गोपियोंको श्रुतियाँ समझो तथा देवकन्याएँ भी इनके रूपमें प्रकट हुई हैं । तपस्यामें लगे हुए मुमुक्षु मुनि ही इन ग्वाल-बालोंके रूपमें दिखायी दे रहे हैं । ये सभी मेरे आनन्दमय विग्रह हैं । यह कदम्ब कल्पवृक्ष है, जो परमानन्दमय श्रीकृष्णका एकमात्र आश्रय बना हुआ है तथा यह पर्वत भी अनादिकालसे मेरा भक्त है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । अहो ! कितने आश्चर्यकी बात है कि दूषित चित्तवाले मनुष्य मेरी इस उत्कृष्ट, सनातन एवं मनोरम पुरीको, जिसकी देवराज इन्द्र, नागराज अनन्त तथा बड़े-बड़े मुनीश्वर भी स्तुति करते हैं, नहीं जानते ! यद्यपि काशी आदि अनेकों मोक्षदायिनी पुरियाँ विद्यमान हैं, तथापि उन सबमें मथुरापुरी ही धन्य है; क्योंकि यह अपने क्षेत्रमें जन्म, उपनयन, मृत्यु और दाह-संस्कार—इन चारों ही कारणोंसे मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करती है । जब तप आदि साधनोंके द्वारा मनुष्योंके अन्तःकरण शुद्ध एवं शुभसङ्कल्पसे युक्त हो जाते हैं और वे निरन्तर ध्यानरूपी धनका संग्रह करने लगते हैं, तभी उन्हें मथुराकी प्राप्ति होती है । मथुरा-वासी धन्य हैं, वे देवताओंके भी माननीय हैं, उनकी महिमाकी गणना नहीं हो सकती । मथुरावासियोंके जो दोष हैं; वे नष्ट हो जाते हैं; उनमें जन्म लेने और मरनेका दोष नहीं देखा जाता । जो निरन्तर मथुरापुरीका चिन्तन करते हैं, वे निर्धन होनेपर भी धन्य हैं; क्योंकि मथुरामें भगवान् भूतेश्वरका निवास है, जो पापियोंको भी मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं । देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् भूतेश्वर मुझको सदा ही प्रिय हैं; क्योंकि वे मेरी प्रसन्नताके लिये कभी भी मथुरापुरीका परित्याग नहीं करते । जो भगवान् भूतेश्वरको नमस्कार, उनका पूजन अथवा स्मरण नहीं करता, वह मनुष्य दुराचारी है । जो मेरे परम भक्त शिवका पूजन नहीं करता, उस पापीको किसी तरह मेरी भक्ति नहीं प्राप्त होती । ध्रुवने बालक होनेपर भी जहाँ मेरी आराधना करके उस परम विशुद्ध स्थानको प्राप्त किया, जो उसके बाप-दादोंको भी नहीं नसीब हुआ था; वह मेरी मथुरापुरी देवताओंके लिये भी दुर्लभ है । वहाँ जाकर मनुष्य यदि लँगड़ा या अंधा होकर भी प्राणोंका परित्याग करे तो उसकी भी मुक्ति हो जाती है । महामना वेदव्यास ! तुम इस विषयमें कभी सन्देह न करना । यह उपनिषदोंका रहस्य है, जिसे मैंने तुम्हारे सामने प्रकाशित किया है ।'

जो मनुष्य पवित्र होकर भगवान्के श्रीमुखसे कहे हुए इस अध्यायका भक्तिपूर्वक पाठ या श्रवण करता है, उसे भी सनातन मोक्षकी प्राप्ति होती है ।

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा व्रज तथा द्वारकामें निवास करनेवालोंकी मुक्ति, वैष्णवोंकी द्वादश शुद्धि, पाँच प्रकारकी पूजा, शालग्रामके स्वरूप और महिमाका वर्णन, तिलककी विधि, अपराध और उनसे छूटनेके उपाय, हविष्यान्न और तुलसीकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—देवि ! एक समयकी बात है, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकासे मथुरामें आये और वहाँसे यमुना पार करके नन्दके व्रजमें गये । वहाँ उन्होंने अपने पिता नन्दजी तथा यशोदा मैयाको प्रणाम करके उन्हें भलीभाँति सान्त्वना दी, फिर पिता-माताने भी उन्हें छातीसे लगाया । इसके बाद वे बड़े-बूढ़े गोपोंसे मिले । उन सबको आश्वासन

दिया तथा बहुत-से वस्त्र और आभूषण आदि भेंटमें देकर वहाँ रहनेवाले सब लोगोंको सन्तुष्ट किया ।

तत्पश्चात् पावन वृक्षोंसे भरे हुए यमुनाके रमणीय तटपर गोपाङ्गनाओंके साथ श्रीकृष्णने तीन राततक वहाँ सुखपूर्वक निवास किया । उस समय उस स्थान-पर अपने पुत्रों और स्त्रियोंसहित नन्दगोप आदि सब लोग, यहाँतक कि पशु, पक्षी और मृग आदि भी भगवान् वासुदेवकी कृपासे दिव्य रूप धारण कर विमानपर आरूढ हुए और परम धाम—वैकुण्ठलोकको चले गये । इस प्रकार नन्दके व्रजमें निवास करनेवाले सब लोगोंको अपना निरामय पद प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्ण देवियों और देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए शोभा-सम्पन्न द्वारकापुरीमे आये ।

वहाँ वसुदेव, उग्रसेन, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और अक्रूर आदि यादव प्रतिदिन उनकी पूजा करते थे तथा वे विश्वरूपधारी भगवान् दिव्य रत्नोंद्वारा बने लतागृहोंमें पारिजात-पुष्प बिछाये हुए मृदुल पलंगोंपर शयन करके अपनी सोलह हजार आठ रानियोंके साथ विहार किया करते थे । इस प्रकार सम्पूर्ण देवताओंका हित और समस्त भूभारका नाश करनेके लिये भगवान् यदुवंशमें अवतीर्ण हुए थे । उन्होंने सभी राक्षसोंका संहार करके पृथ्वीके महान् भारको दूर किया तथा नन्दके व्रज और द्वारकापुरीमें निवास करने-वाले समस्त चराचर प्राणियोंको भवबन्धनसे मुक्त करके उन्हें योगियोंके ध्येयभूत परम सनातन धाममें स्थापित कर दिया । तदनन्तर, वे स्वयं भी अपने परम धामको पधारे ।

पार्वतीने कहा—भगवन् ! वैष्णवोंका जो यथार्थ धर्म है, जिसका अनुष्ठान करके सब मनुष्य भवसागरसे पार हो जाते हैं, उसका मुझसे वर्णन कीजिये ।

महादेवजीने कहा—देवि ! प्रथम वैष्णवोंकी द्वादश[1] प्रकारकी शुद्धि बतायी जाती है । भगवान्के मन्दिरको लीपना, भगवान्की प्रतिमाके पीछे-पीछे जाना तथा भक्तिपूर्वक उनकी प्रदक्षिणा करना—ये तीन कर्म चरणोंकी शुद्धि करनेवाले हैं । भगवान्की पूजाके लिये भक्तिभावके साथ पत्र और पुष्पोंका संग्रह करना—यह हाथोंकी शुद्धिका उपाय है । यह शुद्धि सब प्रकारकी शुद्धियोंसे बढ़कर है । भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके नाम और गुणोंका कीर्तन वाणीकी शुद्धिका उपाय बताया गया है । उनकी कथाका श्रवण और उत्सवका दर्शन—ये दो कार्य क्रमशः कानों और नेत्रोंकी शुद्धि करनेवाले कहे गये हैं । मस्तकपर भगवान्का चरणोदक, निर्माल्य तथा माला धारण करना—ये भगवान्के चरणोंमें पड़े हुए पुरुषके लिये सिरकी शुद्धिके साधन हैं । भगवान्के निर्माल्यभूत पुष्प आदिको सूँघना अन्तःशुद्धि तथा घ्राणशुद्धिका उपाय माना गया है । श्रीकृष्णके युगल चरणोंपर चढ़ा हुआ पत्र-पुष्प आदि संसारमें एकमात्र पावन है, वह सभी अङ्गोंको शुद्ध कर देता है ।

भगवान्की पूजा पाँच प्रकारकी बतायी गयी है; उन पाँचों भेदोंको सुनो—अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या—ये ही पूजाके पाँच प्रकार हैं; अब तुम्हें इनका क्रमशः परिचय दे रहा हूँ । देवताके स्थानको झाड़-बुहारकर साफ करना, उसे लीपना तथा पहलेके चढ़े हुए निर्माल्यको दूर हटाना—'अभिगमन' कहलाता है । पूजाके लिये चन्दन और पुष्पादिके संग्रहका नाम 'उपादान' है । अपने साथ अपने इष्टदेवकी आत्मभावना करना अर्थात् मेरा इष्टदेव मुझसे भिन्न नहीं है, वह मेरा ही आत्मा है; इस तरहकी भावनाको दृढ़ करना 'योग' कहा गया है । इष्टदेवके मन्त्रका अर्थानुसन्धानपूर्वक जप करना 'स्वाध्याय' है । सूक्त और स्तोत्र आदिका पाठ, भगवान्का कीर्तन तथा भगवत्-तत्त्व आदिका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंका अभ्यास भी 'स्वाध्याय' कहलाता है । अपने आराध्यदेवकी यथार्थ-विधिसे पूजा करनेका नाम 'इज्या' है । सुव्रते ! यह पाँच प्रकारकी पूजा मैंने तुम्हें बतायी । यह क्रमशः सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य नामक मुक्ति प्रदान करनेवाली है ।

अब प्रसङ्गवश शालग्राम-शिलाकी पूजाके सम्बन्धमें कुछ निवेदन करूँगा । चार भुजाधारी भगवान् विष्णुके दाहिनी

१. दो पैर, दो हाथ, दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, एक मस्तक और एक अन्तःकरण—इन बारह अङ्गोंकी शुद्धि ही द्वादश शुद्धि है ।

एवं ऊर्ध्वभुजाके क्रमसे अस्त्रविशेष ग्रहण करनेपर केशव आदि नाम होते हैं अर्थात् दाहिनी ओरका ऊपरका हाथ, दाहिनी ओरका नीचेका हाथ, बायीं ओरका ऊपरका हाथ और बायीं ओरका नीचेका हाथ—इस क्रमसे चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र आदि आयुधोंको क्रम या व्यतिक्रमपूर्वक धारण करनेपर भगवान्‌की भिन्न-भिन्न संज्ञाएँ होती । उन्हीं संज्ञाओंका निर्देश करते हुए यहाँ भगवान्‌का पूजन बतलाया जाता है । उपर्युक्त क्रमसे चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले विष्णुका नाम 'केशव' है । पद्म, गदा, चक्र और शङ्खके क्रमसे शस्त्र धारण करनेपर उन्हें 'नारायण' कहते हैं । क्रमशः चक्र, शङ्ख, पद्म और गदा ग्रहण करनेसे वे 'माधव' कहलाते हैं । गदा, पद्म, शङ्ख और चक्र—इस क्रमसे आयुध धारण करनेवाले भगवान्‌का नाम 'गोविन्द' है । पद्म, शङ्ख, चक्र और गदाधारी विष्णु-रूप भगवान्‌को प्रणाम है । शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र धारण करनेवाले मधुसूदन-विग्रहको नमस्कार है । गदा, चक्र, शङ्ख और पद्मसे युक्त त्रिविक्रमको तथा चक्र, गदा, पद्म और शङ्खधारी वामनमूर्तिको प्रणाम है । चक्र, पद्म, शङ्ख और गदा धारण करनेवाले श्रीधररूपको नमस्कार है । चक्र, गदा, शङ्ख तथा पद्मधारी हृषीकेश ! आपको प्रणाम है । पद्म, शङ्ख, गदा और चक्र ग्रहण करनेवाले पद्मनाभविग्रहको नमस्कार है । शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मधारी दामोदर ! आपको मेरा प्रणाम है । शङ्ख, कमल, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले संकर्षणको नमस्कार है । चक्र, शङ्ख, गदा तथा पद्मसे युक्त भगवान् वासुदेव ! आपको प्रणाम है । शङ्ख, चक्र, गदा और कमल आदिके द्वारा प्रद्युम्नमूर्ति धारण करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है । गदा, शङ्ख, कमल तथा चक्रधारी अनिरुद्धको प्रणाम है । पद्म, शङ्ख, गदा और चक्रसे चिह्नित पुरुषोत्तमरूपको नमस्कार है । गदा, शङ्ख, चक्र और पद्म ग्रहण करनेवाले अधोक्षजको प्रणाम है । पद्म, गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले नृसिंह भगवान्‌को नमस्कार है । पद्म, चक्र, शङ्ख और गदा लेनेवाले अच्युतस्वरूपको प्रणाम है । गदा, पद्म, चक्र और शङ्खधारी श्रीकृष्णविग्रहको नमस्कार है ।

जिस शालग्राम-शिलामें द्वार-स्थानपर परस्पर सटे हुए दो चक्र हों, जो शुक्लवर्णकी रेखासे अङ्कित और शोभा-सम्पन्न दिखायी देती हों, उसे भगवान् श्रीगदाधरका स्वरूप समझना चाहिये । सङ्कर्षणमूर्तिमें दो सटे हुए चक्र होते हैं, लाल रेखा होती है और उसका पूर्वभाग कुछ मोटा होता है । प्रद्युम्नके स्वरूपमें कुछ-कुछ पीलापन होता है और उसमें चक्रका चिह्न सूक्ष्म रहता है । अनिरुद्धकी मूर्ति गोल होती है और उसके भीतरी भागमें गहरा एवं चौड़ा छेद होता है; इसके सिवा, वह द्वारभागमें नीलवर्ण और तीन रेखाओंसे युक्त भी होती है । भगवान् नारायण श्यामवर्णके होते हैं, उनके मध्यभागमें गदाके आकारकी रेखा होती है और उनका नाभि-कमल बहुत ऊँचा होता है । भगवान् नृसिंहकी मूर्तिमें चक्रका स्थूल चिह्न रहता है, उनका वर्ण कपिल होता है तथा वे तीन या पाँच विन्दुओंसे युक्त होते हैं । ब्रह्मचारीके लिये उन्हींका पूजन विहित है । वे भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं । जिस शालग्राम-शिलामें दो चक्रके चिह्न विषमभावसे स्थित हों, तीन लिङ्ग हों तथा तीन रेखाएँ दिखायी देती हों; वह वाराह भगवान्‌का स्वरूप है, उसका वर्ण नील तथा आकार स्थूल होता है । भगवान् वाराह भी सबकी रक्षा करनेवाले हैं । कच्छपकी मूर्ति श्यामवर्णकी होती है । उसका आकार पानीकी भँवरके समान गोल होता है । उसमें यत्र-तत्र विन्दुओंके चिह्न देखे जाते हैं तथा उसका पृष्ठ-भाग श्वेत रंगका होता है । श्रीधरकी मूर्तिमें पाँच रेखाएँ होती हैं, वनमालीके स्वरूपमें गदाका चिह्न होता है । गोल आकृति, मध्यभागमें चक्रका चिह्न तथा नीलवर्ण—यह वामन-मूर्तिकी पहचान है । जिसमें नाना प्रकारकी अनेकों मूर्तियों तथा सर्प-शरीरके चिह्न होते हैं, वह भगवान् अनन्तकी प्रतिमा है । दामोदरकी मूर्ति स्थूलकाय एवं नीलवर्णकी होती है । उसके मध्यभागमें चक्रका चिह्न होता है । भगवान् दामोदर नील चिह्नसे युक्त होकर सङ्कर्षण-के द्वारा जगत्‌की रक्षा करते हैं । जिसका वर्ण लाल है, तथा जो लंबी-लंबी रेखा, छिद्र, एक चक्र और कमल आदिसे युक्त एवं स्थूल है, उस शालग्रामको ब्रह्माकी मूर्ति समझनी चाहिये । जिसमें बृहत् छिद्र, स्थूल चक्रका चिह्न और कृष्ण वर्ण हो, वह श्रीकृष्णका स्वरूप है । वह विन्दुयुक्त और विन्दुशून्य दोनों ही प्रकारका देखा जाता है । हयग्रीव

मूर्ति अङ्कुशके समान आकारवाली और पाँच रेखाओंसे युक्त होती है । भगवान् वैकुण्ठ कौस्तुभमणि धारण किये रहते हैं । उनकी मूर्ति बड़ी निर्मल दिखायी देती है । वह एक चक्रसे चिह्नित और श्याम वर्णकी होती है । मत्स्य भगवान्‌की मूर्ति बृहत् कमलके आकारकी होती है । उसका रंग श्वेत होता है तथा उसमें हारकी रेखा देखी जाती है । जिस शालग्राम-का वर्ण श्याम हो, जिसके दक्षिण भागमें एक रेखा दिखायी देती हो तथा जो तीन चक्रोंके चिह्नसे युक्त हो, वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका स्वरूप है, वे भगवान् सबकी रक्षा करने-वाले हैं । द्वारकापुरीमें स्थित शालग्रामस्वरूप भगवान् गदाधरको नमस्कार है, उनका दर्शन बड़ा ही उत्तम है । वे भगवान् गदाधर एक चक्रसे चिह्नित देखे जाते हैं । लक्ष्मीनारायण दो चक्रोंसे, त्रिविक्रम तीनसे, चतुर्व्यूह चारसे, वासुदेव पाँचसे, प्रद्युम्न छःसे, संकर्षण सातसे, पुरुषोत्तम आठसे, नवव्यूह नवसे, दशावतार दससे, अनिरुद्ध ग्यारहसे और द्वादशात्मा बारह चक्रोंसे युक्त होकर जगत्‌की रक्षा करते हैं । इससे अधिक चक्र-चिह्न धारण करनेवाले भगवान्-का नाम अनन्त है । दण्ड, कमण्डलु और अक्षमाला धारण करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा तथा पाँच मुख और दस भुजाओंसे सुशोभित वृषध्वज महादेवजी अपने आयुधोंसहित शालग्राम-शिलामें स्थित रहते हैं । गौरी, चण्डी, सरस्वती और महालक्ष्मी आदि माताएँ, हाथमें कमल धारण करनेवाले सूर्यदेव; हाथीके समान कंधेवाले गजानन गणेश, छः मुखोंवाले स्वामी कार्तिकेय तथा और भी बहुत-से देवगण शालग्राम-प्रतिमामें मौजूद रहते हैं, अतः मन्दिरमें शालग्राम-शिलाकी स्थापना अथवा पूजा करनेपर ये उपर्युक्त देवता भी स्थापित और पूजित होते हैं । जो पुरुष ऐसा करता है, उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदिकी प्राप्ति होती है ।

गण्डकी अर्थात् नारायणी नदीके एक प्रदेशमें शालग्राम-स्थल नामका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है; वहाँसे निकलनेवाले पत्थरको शालग्राम कहते हैं । शालग्राम-शिलाके स्पर्शमात्रसे करोड़ों जन्मोंके पापका नाश हो जाता है । फिर यदि उसका पूजन किया जाय, तब तो उसके फलके विषयमें कहना ही क्या है; वह भगवान्‌के समीप पहुँचानेवाला है । बहुत जन्मोंके पुण्यसे यदि कभी गोष्पदके चिह्नसे युक्त श्रीकृष्ण-शिला प्राप्त हो जाय तो उसीके पूजनसे मनुष्यके पुनर्जन्मकी समाप्ति हो जाती है । पहले शालग्राम-शिलाकी परीक्षा करनी चाहिये; यदि वह काली और चिकनी हो तो उत्तम है । यदि उसकी कालिमा कुछ कम हो तो वह मध्यम श्रेणी-की मानी गयी है और यदि उसमें दूसरे किसी रंगका सम्मिश्रण हो तो वह मिश्रित फल प्रदान करनेवाली होती है । जैसे सदा काठके भीतर छिपी हुई आग मन्थन करनेसे प्रकट होती है, उसी प्रकार भगवान् विष्णु सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी शालग्राम-शिलामें विशेषरूपसे अभिव्यक्त होते हैं । जो प्रतिदिन द्वारकाकी शिला—गोमतीचक्रसे युक्त बारह शालग्राम-मूर्तियोंका पूजन करता है, वह वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है । जो मनुष्य शालग्राम-शिलाके भीतर गुफाका दर्शन करता है, उसके पितर तृप्त होकर कल्पके अन्ततक स्वर्गमें निवास करते हैं । जहाँ द्वारकापुरीकी शिला—अर्थात् गोमतीचक्र रहता है, वह स्थान वैकुण्ठलोक माना जाता है; वहाँ मृत्युको प्राप्त हुआ मनुष्य विष्णुधाममें जाता है । जो शालग्राम-शिलाकी कीमत लगाता है, जो बेचता है, जो विक्रयका अनुमोदन करता है तथा जो उसकी परीक्षा करके मूल्यका समर्थन करता है, वे सब नरकमें पड़ते हैं । इसलिये देवि ! शालग्राम-शिला और गोमतीचक्रकी खरीद-बिक्री छोड़ देनी चाहिये । शालग्राम-स्थलसे प्रकट हुए भगवान् शालग्राम और द्वारकासे प्रकट हुए गोमतीचक्र—इन दोनों देवताओंका जहाँ समागम होता है, वहाँ मोक्ष मिलनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है । द्वारकासे प्रकट हुए गोमती-चक्रसे युक्त, अनेकों चक्रोंसे चिह्नित तथा चक्रासन-शिलाके समान आकारवाले भगवान् शालग्राम साक्षात् चित्स्वरूप निरञ्जन परमात्मा ही हैं । ओङ्काररूप तथा नित्यानन्दस्वरूप शालग्रामको नमस्कार है । महाभाग शालग्राम ! मैं आपका अनुग्रह चाहता हूँ । प्रभो ! मैं ऋणसे ग्रस्त हूँ, मुझ भक्तपर अनुग्रह कीजिये ।

अब मैं प्रसन्नतापूर्वक तिलककी विधिका वर्णन करता हूँ । ललाटमें केशव, कण्ठमें श्रीपुरुषोत्तम, नाभिमें नारायण-देव, हृदयमें वैकुण्ठ, बायीं पसलीमें दामोदर, दाहिनी पसलीमें त्रिविक्रम, मस्तकपर हृषीकेश, पीठमें पद्मनाभ, कानोंमें गङ्गा-यमुना तथा दोनों भुजाओंमें श्रीकृष्ण और

हरिका निवास समझना चाहिये। उपर्युक्त स्थानोंमें तिलक करनेसे ये बारह देवता संतुष्ट होते हैं। तिलक करते समय इन बारह नामोंका उच्चारण करना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर विष्णुलोकको जाता है। भगवान्‌के चरणोदकको पीना चाहिये और पुत्र, मित्र तथा स्त्री आदि समस्त परिवारके शरीरपर उसे छिड़कना चाहिये। श्रीविष्णुका चरणोदक यदि पी लिया जाय तो वह करोड़ों जन्मोंके पापका नाश करनेवाला होता है।

भगवान्‌के मन्दिरमें खड़ाऊँ या सवारीपर चढ़कर जाना, भगवत्-सम्बन्धी उत्सवोंका सेवन न करना, भगवान्‌के सामने जाकर प्रणाम न करना, उच्छिष्ट या अपवित्र अवस्थामें भगवान्‌की वन्दना करना, एक हाथसे प्रणाम करना, भगवान्‌के सामने ही एक स्थानपर खड़े-खड़े प्रदक्षिणा करना, भगवान्‌के आगे पाँव फैलाना, पलंगपर बैठना, सोना, खाना, झूठ बोलना, जोर-जोरसे चिल्लाना, परस्पर बात करना, रोना, झगड़ा करना, किसीको दण्ड देना, अपने बलके घमंडमें आकर किसीपर अनुग्रह करना, स्त्रियोंके प्रति कठोर बात कहना, कम्बल ओढ़ना, दूसरेकी निन्दा, परायी स्तुति, गाली बकना, अधोवायुका त्याग (अपशब्द) करना, शक्ति रहते हुए गौण उपचारोंसे पूजा करना—मुख्य उपचारोंका प्रबन्ध न करना, भगवान्‌को भोग लगाये विना ही भोजन करना, सामयिक फल आदिको भगवान्‌की सेवामें अर्पण न करना, उपयोगमें लानेसे बचे हुए भोजनको भगवान्‌के लिये निवेदन करना, भोजनका नाम लेकर दूसरेकी निन्दा तथा प्रशंसा करना, गुरुके समीप मौन रहना, आत्म-प्रशंसा करना तथा देवताओंको कोसना—ये विष्णुके प्रति बत्तीस अपराध बताये गये हैं। 'मधुसूदन! मुझसे प्रतिदिन हजारों अपराध होते रहते हैं; किन्तु मैं आपका ही सेवक हूँ, ऐसा समझकर मुझे उनके लिये क्षमा करें।' * इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्‌के सामने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। ऐसा करनेसे भगवान् श्रीहरि सदा हजारों अपराध क्षमा करते हैं। द्विजातियोंके लिये सबेरे और शाम—दो ही समय भोजन करना वेदविहित है। गोल लौकी, लहसुन, ताड़का फल और भाँटा—इन्हें वैष्णव पुरुषोंको नहीं खाना चाहिये। वैष्णवके लिये बड़, पीपल, मदार, कुम्भी, तिन्दुक, कोविदार (कचनार) और कदम्बके पत्तेमें भोजन करना निषिद्ध है। जला हुआ तथा भगवान्‌को अर्पण न किया हुआ अन्न, जम्बीर और बिजौरा नीबू, शाक तथा खाली नमक भी वैष्णवको नहीं खाना चाहिये। यदि दैवात् कभी खा ले तो भगवन्नामका स्मरण करना चाहिये। हेमन्त ऋतुमें उत्पन्न होनेवाला सफेद धान जो सड़ा हुआ न हो, मूँग, तिल, यव, केराव, कंगनी, नीवार (तीना), शाक, हिलमोचिका (हिलसा), कालशाक, बथुवा, मूली, दूसरे-दूसरे मूल-शाक, सेंधा और साँभर नमक, गायका दही, गायका घी, बिना माखन निकाला हुआ गायका दूध, कटहल, आम, हर्रे, पिप्पली, जीरा, नारङ्गी, इमली, केला, लवली (हरफा रेवरी), आँवलेका फल, गुड़के सिवा ईखके रससे तैयार होनेवाली अन्य सभी वस्तुएँ तथा बिना तेलके पकाया हुआ अन्न—इन सभी खाद्य पदार्थोंको मुनिलोग हविष्यान्न कहते हैं।

जो मनुष्य तुलसीके पत्र और पुष्प आदिसे युक्त माला धारण करता है, उसको भी विष्णु ही समझना चाहिये। आँवलेका वृक्ष लगाकर मनुष्य विष्णुके समान हो जाता है। आँवलेके चारों ओर साढ़े तीन सौ हाथकी भूमिको कुरुक्षेत्र जानना चाहिये। तुलसीकी लकड़ीके रुद्राक्षके समान दाने बनाकर उनके द्वारा तैयार की हुई माला कण्ठमें धारण करके भगवान्‌का पूजन आरम्भ करना चाहिये। भगवान्‌को चढ़ायी हुई तुलसीकी माला मस्तकपर धारण करे तथा भगवान्‌को अर्पण किये हुए चन्दनके द्वारा अपने अङ्गोंपर भगवान्‌का नाम लिखे। यदि तुलसीके काष्ठकी बनी हुई मालाओंसे अलङ्कृत होकर मनुष्य देवताओं और पितरोंके पूजनादि कार्य करे तो वह कोटिगुना फल देनेवाला होता है। जो मनुष्य तुलसीके काष्ठकी बनी हुई माला भगवान् विष्णुको अर्पित करके पुनः प्रसादरूपसे उसको भक्तिपूर्वक

---

* अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
तवाहमिति मां मत्वा क्षमस्व मधुसूदन॥
(७९। ४४)

धारण करता है, उसके पातक नष्ट हो जाते हैं। पाद्य आदि उपचारोंसे तुलसीकी पूजा करके इस मन्त्रका उच्चारण करे—जो दर्शन करनेपर सारे पापसमुदायका नाश कर देती है, स्पर्श करनेपर शरीरको पवित्र बनाती है, प्रणाम करनेपर रोगोंका निवारण करती है, जलसे सींचनेपर यमराजको भी भय पहुँचाती है, आरोपित करनेपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप ले जाती है और भगवान्के चरणोंमें चढ़ानेपर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसी देवीको नमस्कार है।*

नाम-कीर्तनकी महिमा, भगवान्के चरण-चिह्नोंका परिचय तथा प्रत्येक मासमें भगवान्की विशेष आराधनाका वर्णन

पार्वतीजीने पूछा—कृपानिधे! विषयरूपी ग्राहोंसे भरे हुए भयङ्कर कलियुगके आनेपर संसारके सभी मनुष्य पुत्र, स्त्री और धन आदिकी चिन्तासे व्याकुल रहेंगे, ऐसी दशामें उनके उद्धारका क्या उपाय है? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि! कलियुगमें केवल हरि-नाम ही संसारसमुद्रसे पार लगानेवाला है। जो लोग प्रतिदिन 'हरे राम हरे कृष्ण' आदि प्रभुके मङ्गलमय नामोंका उच्चारण करते हैं, उन्हें कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता; अतः बीच-बीचमें जो आवश्यक कर्म प्राप्त हों, उन्हें करते-करते भगवान्के नामोंका भी स्मरण करते रहना चाहिये। जो वारंवार 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' की रट लगाता रहता है तथा मेरे और तुम्हारे नामका भी व्यतिक्रमपूर्वक अर्थात् गौरीशङ्कर आदि कहकर जप किया करता है, वह भी जैसे आग रूईकी ढेरीको जला डालती है, उसी प्रकार अपनी पाप-राशिको भस्म करके उससे मुक्त हो जाता है। जय अथवा श्रीशब्दपूर्वक जो तुम्हारा, मेरा या श्रीकृष्णका मङ्गलमय नाम है, उसका जप करनेसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। दिन, रात और सन्ध्या—सभी समय नाम-स्मरण करना चाहिये। दिन-रात हरि-नामका जप करनेवाला पुरुष श्रीकृष्णका प्रत्यक्ष दर्शन पाता है। अपवित्र हो या पवित्र, सब समय, निरन्तर भगवन्नामका स्मरण करनेसे वह क्षणभरमें भव-बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।† भगवान्का नाम नाना प्रकारके अपराधोंसे युक्त मनुष्यका पाप भी हर लेता है। कलियुगमें यज्ञ, व्रत, तप और दान—कोई भी कर्म सब अङ्गोंसे पूर्ण नहीं उतरता; केवल गङ्गाका स्नान और हरि-नामका कीर्तन—ये ही दो साधन विघ्न-बाधाओंसे रहित हैं। कल्याणी! हत्याजनित हजारों भयङ्कर पाप तथा दूसरे-दूसरे पातक भी भगवान्के गोविन्द नामका उच्चारण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी दशामें क्यों न स्थित हो, जो पुण्डरीकाक्ष (कमल-नयन) भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर—सब ओरसे पवित्र हो जाता है।‡ केवल भगवन्नामोंके स्मरणसे तथा भगवान्के चरणोंका चिन्तन करनेसे शुद्धि होती है। सोने, चाँदी, भिगोये हुए आटे अथवा पुष्प-मालाके द्वारा भगवान्के चरणोंकी आकृति बनाकर उसे चक्र आदि चिह्नोंसे अङ्कित कर ले, उसके बाद पूजन आरम्भ करे। पूजनके समय भगवच्चरणों-का इस प्रकार ध्यान करे—भगवान् अपने दाहिने पैरके अङ्गूठेकी जड़में प्रणतजनोंके संसार-बन्धनका उच्छेद करनेके लिये चक्रका चिह्न धारण करते हैं। मध्यमा अङ्गुलीके मध्यभागमें अच्युतने अत्यन्त सुन्दर कमलका चिह्न धारण

* या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥ (७९।६६)

† अशुचिर्वा शुचिर्वापि सर्वकालेषु सर्वदा। नामसंस्मरणादेव संसारान्मुच्यते क्षणात्॥ (८०।७, ८)

‡ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ (८०।११)

कर रखा है; उसका उद्देश्य है—ध्यान करनेवाले भक्तोंके चित्तरूपी भ्रमरको लुभाना। कमलके नीचे वे ध्वजका चिह्न धारण करते हैं, जो मानो समस्त अनर्थोंको परास्त करके फहरानेवाली विजय-ध्वजा है। कनिष्ठिका अङ्गुलीकी जड़में वज्रका चिह्न है, जो भक्तोंकी पाप-राशिको विदीर्ण करनेवाला है। पैरके पार्श्व-भागमें बीचकी ओर अङ्कुशका चिह्न है, जो भक्तोंके चित्तरूपी हाथीका दमन करनेवाला है। श्रीहरि अपने अङ्गुष्ठके पर्वमें भोग-सम्पत्तिके प्रतीकभूत यवका चिह्न धारण करते हैं तथा मूल-भागमें गदाकी रेखा है, जो समस्त देहधारियोंके पापरूपी पर्वतको चूर्ण कर डालनेवाली है। इतना ही नहीं, वे अजन्मा भगवान् सम्पूर्ण विद्याओंको प्रकाशित करनेके लिये भी पद्म आदि चिह्नको धारण करते हैं। दाहिने पैरमें जो-जो चिह्न हैं, उन्हीं-उन्हीं चिह्नोंको करुणानिधान प्रभु अपने बायें पैरमें भी धारण करते हैं; इसलिये गोविन्दके माहात्म्यका, जो आनन्दमय रसके कारण अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है, सदा श्रवण और कीर्तन करना चाहिये। ऐसा करनेवाले मनुष्यकी मुक्ति होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अब मैं प्रत्येक मासका वह कृत्य बतला रहा हूँ, जो भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला है। जेठके महीनेमें पूर्णिमा तिथिको स्नान आदिसे पवित्र होकर यत्नपूर्वक श्रीहरिका स्नानोत्सव मनाना चाहिये, इससे दिन, पक्ष, मास, ऋतु और वर्षभरके पाप नष्ट हो जाते हैं। कोटि-कोटि सहस्र जो पातक और उपपातक होते हैं, उन सबका नाश हो जाता है। स्नानके समय कलशमें जल लेकर भगवान्‌के मस्तकपर धीरे-धीरे गिराना चाहिये और पुरुषसूक्तके मन्त्रों तथा पावमानी ऋचाओंका क्रमशः पाठ करते रहना चाहिये। नारियलयुक्त जल, तालफलसे युक्त जल, रत्नमिश्रित जल, चन्दनमिश्रित जल तथा पुष्पयुक्त जल—इन पाँच उपचारोंसे स्नान कराकर अपने वैभव-विस्तारके अनुसार भगवान्‌की आराधना करे। तत्पश्चात् 'घं घण्टायै नमः' इस मन्त्रको पढ़कर घण्टा बजावे और इस प्रकार प्रार्थना करे—'अपनी ऊँची आवाजसे पतितोंकी पातकराशिका निवारण करनेवाली घण्टे! घोर संसारसागरमें पड़े हुए मुझ पापीकी रक्षा करो।' जो श्रोत्रिय विद्वान् ब्राह्मण पवित्रभावसे इस प्रकार भगवान्‌की आराधना करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जाता है।

आषाढ़ शुक्ला द्वितीयाको भगवान्‌की सवारी निकालकर रथयात्रा-सम्बन्धी उत्सव करना चाहिये। तथा आषाढ़ शुक्ला एकादशीको भगवान्‌के शयनका उत्सव मनाना चाहिये फिर श्रावणके महीनेमें श्रावणीकी विधिका पालन करना उचित है। भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको भगवान् श्रीकृष्णके जन्मका दिन है, उस दिन व्रत रखना चाहिये। तत्पश्चात् आश्विनके महीनेमें सोये हुए भगवान्‌के करवट बदलनेका उत्सव मनाना उचित है। उसके बाद समयानुसार श्रीहरिके शयनसे उठनेका उत्सव करे, अन्यथा वह मनुष्य विष्णुका द्रोह करनेवाला माना जाता है। आश्विनके शुक्लपक्षमें भगवती महामायाका भी पूजन करना कर्तव्य है। उस समय विष्णुरूपा भगवतीकी सोने या चाँदीकी प्रतिमा बना लेनी चाहिये। हिंसा और द्वेषका परित्याग करना चाहिये; क्योंकि विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष धर्मात्मा होता है [और हिंसा, द्वेष आदि महान् अधर्म हैं]। कार्तिक पुण्यमास है; उसमें इच्छानुसार पुण्य करे। भगवान् दामोदरके लिये प्रतिदिन किसी ऊँचे स्थानपर दीपदान करना उचित है। दीपक चार अङ्गुलका चौड़ा हो और उसमें सात बत्तियाँ जलायी जायँ। फिर पक्षके अन्तमें अमावास्याको सुन्दर दीपावलीका उत्सव मनाया जाय। अगहनके शुक्लपक्षमें षष्ठी तिथिको सफेद वस्त्रोंके द्वारा भगवान् जगदीशकी और विशेषतः ब्रह्माजीकी पूजा करे। पौष मासमें भगवान्‌का पुष्पमिश्रित जलसे अभिषेक तथा तरल चन्दन वर्जित है। मकरसंक्रान्तिके दिन तथा माघके महीनेमें अधिवासित तण्डुलका भगवान्‌के लिये नैवेद्य लगावे और 'ॐ विष्णवे नमः' इस मन्त्रका उच्चारण करे। फिर ब्राह्मणोंको देवाधिदेव भगवान्‌के सामने बिठाकर भक्तिपूर्वक भोजन करावे तथा उन भगवद्भक्त द्विजोंकी भगवद्बुद्धिसे पूजा करे। एक भगवद्भक्त पुरुषके भोजन करा देनेपर करोड़ों मनुष्योंके भोजन करानेका फल होता है। यदि पूजामें किसी अङ्गकी कमी रह गयी हो तो वह ब्राह्मण-भोजन करानेसे अवश्य पूर्ण हो जाती है। माघके शुक्लपक्षमें वसन्त-पञ्चमीको भगवान् केशवको नहलाकर आमके पल्लव

तथा भाँति-भाँतिके सुगन्धित चूर्ण आदिके द्वारा विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् 'जय कृष्ण' कहकर भगवान्‌का स्मरण करते हुए उन्हें एक मनोहर उपवनमें प्रदक्षिणभावसे ले जाय और वहाँ दोलोत्सव मनावे। उक्त उपवनको प्रज्वलित दीपकोंके द्वारा प्रकाशित किया जाय। उसमें ऐसे-ऐसे वृक्ष हों, जो सभी ऋतुओंमें फूलोंसे भरे रहें। फल-फूलोंसे सुशोभित नाना प्रकारके वृक्ष, पुष्पनिर्मित चँदोवे, जलसे भरे हुए घट, आमकी छोटी-बड़ी शाखाएँ तथा छत्र और चँवर आदि वस्तुएँ उस वनकी शोभा बढ़ा रही हों। कलियुगमें विशेषरूपसे दोलोत्सवका विधान है। फाल्गुनकी चतुर्दशीको आठवें पहरमें अथवा पूर्णमासी या प्रतिपदाकी सन्धिमें भगवान्‌की भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करे। उस समय श्वेत, लाल, गौर तथा पीले—इन चार प्रकारके चूर्णोंका उपयोग करे, उनमें कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थ मिले होने चाहिये। हल्दीका रंग मिला देनेसे उन चूर्णोंके रंग तथा रूप और भी मनोहर हो जाते हैं। इनके सिवा, अन्य प्रकारके रंग-रूपवाले चूर्णोंद्वारा भी परमेश्वरको प्रसन्न करे। एकादशीसे लेकर पञ्चमीतक इस उत्सवको पूरा करे अथवा पाँच या तीन दिनतक दोलोत्सव करना उचित है। यदि मनुष्य एक बार भी झूलेमें झूलते हुए दक्षिणाभिमुख श्रीकृष्णका दर्शन कर लें तो वे पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

महाभागे! जो मनुष्य वैशाख-मासमें जलसे भरे हुए सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीके पात्रमें श्रीशालग्रामको या भगवान्‌की प्रतिमाको पधराकर जलमें ही उसका पूजन करता है, उसके पुण्यकी गणना नहीं हो सकती। 'दमन' (दौना) नामक पुष्पका आरोपण करके उसे श्रीविष्णुको अर्पित करना चाहिये। वैशाख, श्रावण अथवा भाद्रपद मासमें 'दमनार्पण' करना उचित है। पूर्वी हवा चलनेपर ही दमनार्पण आदि कर्म होते हैं; उस समय विधिपूर्वक भगवान्‌का पूजन करना चाहिये; अन्यथा सब कुछ निष्फल हो जाता है। वैशाखकी तृतीयाको विशेषतः जलमें अथवा मण्डल, मण्डप या बहुत बड़े वनमें यह कार्य सम्पन्न करना चाहिये। वैशाख-मासमें प्रतिदिन भगवान्‌के अङ्गको सुगन्धित चन्दन आदि लगाकर परिपुष्ट करे। प्रयत्नपूर्वक ऐसा कार्य करे, जो भगवान्‌के कृश शरीरके लिये पुष्टिकारक जान पड़े। चन्दन, अगरु, ह्रीवेर, कालागरु, कुङ्कुम, रोचना, जटामाँसी और मुरा—ये विष्णुके उपयोगमें आनेवाले आठ गन्ध माने गये हैं। उन सुगन्धित पदार्थोंका भगवान् विष्णुके अङ्गोंपर लेप करे। तुलसीके काष्ठको चन्दनकी भाँति घिसकर उसमें कर्पूर और अगरु मिला दे अथवा केसर ही मिलावे तो वह भगवान्‌के लिये 'हरिचन्दन' हो जाता है। जो मनुष्य यात्राके समय भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। जो लोग सुगन्धमिश्रित जलसे भगवान्‌को नहलाते हैं; उनके लिये भी यही फल है। अथवा वैशाख-मासमें भगवान्‌को फूलोंके भीतर रखना चाहिये। वृन्दावनमें जाकर तरह-तरहके फल जुटावे और भगवान्‌को भोग लगाकर किसी सुयोग्य भगवद्भक्तको सब खिला दे। नारियलका फल अर्पण करे अथवा उसे फोड़कर उसकी गरी निकाल कर दे। बेरका फल निवेदन करे। कटहलका कोया निकालकर भोग लगावे तथा दहीयुक्त अन्नको घीसे तर करके भगवान्‌के आगे रक्खे। कहाँतक कहा जाय? जो-जो वस्तु अपनेको विशेष प्रिय हो, वह सब भगवान्‌को अर्पण करे। नैवेद्य और वस्त्र आदि भगवान्‌को अर्पण करे। पुनः उसे स्वयं उपयोगमें न लावे। विष्णुके उद्देश्यसे दी हुई वस्तु विशेषतः उनके भक्तोंको ही देनी चाहिये। महेश्वरि! इस प्रकार संक्षेपसे ही मैंने तुम्हारे सामने ये कुछ बातें बतायी हैं। जिन शास्त्रोंमें श्रीकृष्णके रूप और गुणोंका वर्णन है, उन्हें समझनेकी शक्ति हो जाय तो और कोई शास्त्र पढ़नेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। भगवान्‌के प्रेम, भाव, रस, भक्ति, विलास, नाम तथा हारोंमें यदि मन लग गया तो कामिनियोंसे क्या लेना है? अतः व्रज-बालकोंके स्वामी श्रीकृष्णको, उनके क्रीडानिकेतन वृन्दावनको, व्रजभूमिको तथा यमुना-जलको मन लगाकर भजो। यदि इस शरीरमें त्रिभुवनके स्वामी भगवान् गोविन्दके चरणारविन्दोंकी धूलि लिपटी हो तो इसमें अगरु और चन्दन आदि लगाना व्यर्थ है।

मन्त्रचिन्तामणिका उपदेश तथा उसके ध्यान आदिका वर्णन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! एक समयकी बात है, देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् सदाशिव यमुनाजीके तटपर बैठे हुए थे । उस समय नारदजीने उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'देवदेव महादेव ! आप सर्वज्ञ, जगदीश्वर,

भगवद्धर्मका तत्त्व जाननेवाले तथा श्रीकृष्ण-मन्त्रका ज्ञान रखनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। देवेश्वर ! यदि मैं सुननेका अधिकारी होऊँ तो कृपा करके मुझे वह मन्त्र बताइये, जो एक बार-के उच्चारण मात्रसे मनुष्योंको उत्तम फल प्रदान करता है।

शिवजी बोले—महाभाग ! तुमने यह बहुत उत्तम प्रश्न किया है । क्यों न हो, तुम सम्पूर्ण जगत्के हितैषी जो ठहरे ! मैं तुम्हें मन्त्र-चिन्तामणिका उपदेश दे रहा हूँ । यद्यपि वह बहुत ही गोपनीय है तो भी मैं तुमसे उसका वर्णन करूँगा । कृष्णके दो मन्त्र अत्यन्त उत्तम हैं, उन दोनोंको तुम्हें बताता हूँ; मन्त्र-चिन्तामणि, युगल, द्वय और पञ्चपदी—ये इन दोनों मन्त्रोंके पर्यायवाची नाम हैं । इनमें पहले मन्त्रका प्रथम पद है—'गोपीजन', द्वितीय पद है—'वल्लभ', तृतीय पद है—'चरणान्', चतुर्थ पद है—'शरणम्' तथा पञ्चम पद है 'प्रपद्ये ।' इस प्रकार यह ('गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये') मन्त्र पाँच पदोका है । इसका नाम मन्त्र-चिन्तामणि है । इस महामन्त्रमें सोलह अक्षर हैं । दूसरे मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—'नमो गोपीजन' इतना कहकर पुनः 'वल्लभाभ्याम्' का उच्चारण करना चाहिये । तात्पर्य यह कि 'नमो गोपीजनवल्लभाभ्याम्' के रूपमें यह दो पदोंका मन्त्र है, जो दस अक्षरोंका बताया गया है । जो मनुष्य श्रद्धा या अश्रद्धासे एक बार भी इस पञ्चपदीका जप कर लेता है, उसे निश्चय ही श्रीकृष्णके प्यारे भक्तोंका सान्निध्य प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । इस मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये न तो पुरश्चरणकी अपेक्षा पड़ती है और न न्यास-विधानका क्रम ही अपेक्षित है । देश-कालका भी कोई नियम नहीं है । अरि और मित्र आदिके शोधनकी भी आवश्यकता नहीं है । मुनीश्वर ! ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल-तक सभी मनुष्य इस मन्त्रके अधिकारी हैं । स्त्रियाँ, शूद्र आदि, जड, मूक, अन्ध, पङ्गु, हूण, किरात, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, यवन, कङ्क एवं खश आदि पापयोनिके, दम्भी, अहङ्कारी, पापी, चुगुलखोर, गोघाती, ब्रह्महत्यारे, महापातकी, उपपातकी, ज्ञान-वैराग्यहीन, श्रवण आदि साधनोंसे रहित तथा अन्य जितने भी निकृष्ट श्रेणीके लोग हैं, उन सबका इस मन्त्रमें अधिकार है । मुनिश्रेष्ठ ! यदि सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें उनकी भक्ति है तो वे सब-के-सब अधिकारी हैं, अन्यथा नहीं; इसलिये भगवान्में भक्ति न रखनेवाले कृतघ्न, मानी, श्रद्धाहीन और नास्तिकको इस मन्त्रका उपदेश नहीं देना चाहिये । जो सुनना न चाहता हो, अथवा जिसके हृदयमें गुरुके प्रति सेवाका भाव न हो उसे भी यह मन्त्र नहीं बताना चाहिये । जो श्रीकृष्णका अनन्य भक्त हो, जिसमें दम्भ और लोभका अभाव हो तथा जो काम और क्रोधसे सर्वथा मुक्त हो, उसे यत्नपूर्वक इस मन्त्रका उपदेश देना चाहिये । इस मन्त्रका ऋषि मैं ही हूँ । वल्लवी-वल्लभ श्रीकृष्ण इसके देवता हैं तथा प्रियासहित भगवान् गोविन्दके दास्यभावकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है । यह मन्त्र एक बारके ही उच्चारणसे कृतकृत्यता प्रदान करनेवाला है ।

द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं इस मन्त्रका ध्यान बतलाता हूँ । वृन्दावनके भीतर कल्पवृक्षके मूलभागमें रत्नमय सिंहासन-के ऊपर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधिकाजीके साथ विराजमान हैं । श्रीराधिकाजी उनके वामभागमें बैठी हुई हैं । भगवान्का श्रीविग्रह मेघके समान श्याम है । उसके ऊपर पीताम्बर शोभा पा रहा है । उनके दो भुजाएँ हैं । गलेमें

वनमाला पड़ी हुई है। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट शोभा दे रहा है। मुख-मण्डल करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति कान्तिमान् है। वे अपने चञ्चल नेत्रोंको इधर-उधर घुमा रहे हैं। उनके कानोंमें कनेर-पुष्पके आभूषण सुशोभित हैं। ललाटमें दोनों ओर चन्दन तथा बीचमें कुङ्कुम-विन्दुसे तिलक लगाया गया है, जो मण्डलाकार जान पड़ता है। दोनों कुण्डलोंकी प्रभासे वे प्रातःकालीन सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी दे रहे हैं। उनके कपोल दर्पणकी भाँति स्वच्छ हैं, जो पसीनेकी छोटी-छोटी बूँदोंके कारण बड़े शोभायमान प्रतीत होते हैं। उनके नेत्र प्रियाके मुखपर लगे हुए हैं। उन्होंने लीलावश अपनी भौंहें ऊँची कर ली हैं। ऊँची नासिकाके अग्रभागमें मोतीकी बुलाक चमक रही है। पके हुए कुँदरूके समान लाल ओठ दाँतोंका प्रकाश पड़नेसे अधिक सुन्दर दिखायी देते हैं। केयूर, अङ्गद, अच्छे-अच्छे रत्न तथा मुँदरियोंसे भुजाओं और हाथोंकी शोभा बहुत बढ़ गयी है। वे बायें हाथमें मुरली तथा दाहिनेमें कमल लिये हुए हैं। करधनीकी प्रभासे शरीरका मध्यभाग जगमगा रहा है। नूपुरोंसे चरण सुशोभित हो रहे हैं। भगवान् क्रीड़ा-रसके आवेशसे चञ्चल प्रतीत होते हैं। उनके नेत्र भी चपल हो रहे हैं। वे अपनी प्रियाको बारंबार हँसाते हुए स्वयं भी उनके साथ हँस रहे हैं। इस प्रकार श्रीराधाके साथ श्रीकृष्णका चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तर श्रीराधाकी सखियोंका ध्यान करे। उनकी अवस्था और गुण श्रीराधाजीके ही समान हैं। वे चँवर और पंखी आदि लेकर अपनी स्वामिनीकी सेवामें लगी हुई हैं।

नारदजी ! श्रीकृष्णप्रिया राधा अपनी चैतन्य आदि अन्तरङ्ग विभूतियोंसे इस प्रपञ्चका गोपन—संरक्षण करती हैं; इसलिये उन्हें 'गोपी' कहते हैं। वे श्रीकृष्णकी आराधनामें तन्मय होनेके कारण 'राधिका' कहलाती हैं। श्रीकृष्णमयी होनेसे ही वे परादेवता हैं। पूर्णतः लक्ष्मीस्वरूपा हैं। श्रीकृष्णके आह्लादका मूर्तिमान् स्वरूप होनेके कारण मनीषीजन उन्हें 'ह्लादिनी शक्ति' कहते हैं। श्रीराधा साक्षात् महालक्ष्मी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण हैं। मुनिश्रेष्ठ ! इनमें थोड़ा-सा भी भेद नहीं है। श्रीराधा दुर्गा हैं तो श्रीकृष्ण रुद्र। वे सावित्री हैं तो ये साक्षात् ब्रह्मा हैं। अधिक क्या कहा जाय, उन दोनोंके बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। जड-चेतनमय सारा संसार श्रीराधा-कृष्णका ही स्वरूप है। इस प्रकार सबको उन्हीं दोनोंकी विभूति समझो। मैं नाम ले-लेकर गिनाने लगूँ तो सौ करोड़ वर्षोंमें भी उस विभूतिका वर्णन नहीं कर सकता।* तीनों लोकोंमें पृथ्वी सबसे श्रेष्ठ मानी गयी है। उसमें भी जम्बूद्वीप सब द्वीपोंसे श्रेष्ठ है। जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष और भारतवर्षमें भी मथुरापुरी श्रेष्ठ है। मथुरामें भी वृन्दावन, वृन्दावनमें भी गोपियोंका समुदाय, उस समुदायमें भी श्रीराधाकी सखियोंका वर्ग तथा उसमें भी स्वयं श्रीराधिका सर्वश्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्णके अत्यधिक निकट होनेके कारण श्रीराधाका महत्त्व सबकी अपेक्षा अधिक है। पृथ्वी आदिकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठताका इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं है। वही ये श्रीराधिका हैं, जो 'गोपी' कही गयी हैं; इनकी सखियाँ ही 'गोपीजन' कहलाती हैं। इन सखियोंके समुदायके दो ही प्रियतम हैं, दो ही उनके प्राणोंके स्वामी हैं—श्रीराधा और श्रीकृष्ण। उन दोनोंके चरण ही इस जगत्में शरण देनेवाले हैं। मैं अत्यन्त दुखी जीव हूँ, अतः उन्हींका आश्रय लेता हूँ—उन्हींकी शरणमें पड़ा हूँ। शरणमें जानेवाला मैं जो कुछ भी हूँ तथा मेरी कहलानेवाली जो कोई भी वस्तु है, वह सब श्रीराधा और श्रीकृष्णको ही समर्पित है—सब कुछ उन्हींके लिये है, उन्हींकी भोग्य वस्तु है। मैं और मेरा कुछ भी नहीं है। विप्रवर ! इस प्रकार मैंने थोड़ेमें 'गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये' इस मन्त्रके अर्थका वर्णन किया है। युगलार्थ, न्यास, प्रपत्ति, शरणागति तथा आत्मसमर्पण—ये पाँच पर्याय बतलाये गये हैं। साधकको रात-दिन आलस्य छोड़कर यहाँ बताये हुए विषयका चिन्तन करना चाहिये।

---

* देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता। सर्वलक्ष्मीस्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी ॥
ततः सा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनीति मनीषिभिः। तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः ॥
सा तु साक्षान्महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः। नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम ॥
इयं दुर्गा हरी रुद्रः कृष्णः शक्र इयं शची। सावित्रीयं हरिर्ब्रह्मा धूमोर्णासौ यमो हरिः ॥
बहुना किं मुनिश्रेष्ठ विना ताभ्यां न किंचन। चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत् ॥
इत्थं सर्वं तयोरेव विभूतिं विद्धि नारद। न शक्यते मया वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥
(८१। ५३—५८)

श्रीहरिः

जैनबन्धुओंसे नम्र निवेदन

'कल्याण'के पद्मपुराणाङ्क, पृष्ठ २६० में पद्मपुराणके एक प्रसङ्गका अनुवाद छपा है। उसके सम्बन्धमें हमारे पास कुछ जैन महानुभावोंके पत्र आये हैं, और सहयोगी 'हितेच्छु' में भी एक लेख छपा है। इस सम्बन्धमें हमारा यह विनम्र निवेदन है कि उक्त प्रसङ्ग इस समय किसी व्यक्ति-विशेषके द्वारा लिखित कोई स्वतन्त्र लेख नहीं है—पद्मपुराणके ही एक अंशका भाषान्तर है। पुराणोंमें ऐसी बातें आती हैं। वे क्यों—किस हेतुसे आयी हैं, इसका हमें ठीक पता नहीं है। यद्यपि जैनधर्मका हमें पूरा ज्ञान नहीं है, तथापि हम इतना निश्चय ही जानते हैं कि जैनधर्मके किसी छोटे सम्प्रदायमें प्रकारान्तरसे चाहे दया-दान आदिका विरोध भी किया जाता हो, परन्तु वस्तुतः जैनधर्म बड़ा ही पवित्र और उदार है, एवं उसमें संयम, नियम, तपस्या, दया, दान आदिका बहुत ही सुन्दर समावेश है। जैन-धर्म तो अपने घरकी प्यारी वस्तु है। 'कल्याण'की नीति तो किसी परधर्मपर भी आक्षेप करनेकी अनुमति नहीं देती। हमारी जानकारीमें 'कल्याण' में अबतक ऐसा कोई लेख नहीं छपा, जिसमें जैनधर्मपर आक्षेप किया गया हो; बल्कि जैनधर्मके सम्बन्धमें जैन-महात्माओं और जैनी विद्वानोंके लेख समय-समयपर छपते रहते हैं। यह प्रसङ्ग भी जैनधर्मपर आक्षेप करने या जैनबन्धुओंका जी दुखानेकी नीयतसे नहीं छापा गया। पद्मपुराणका प्रसङ्ग था, ज्यों-का-त्यों प्रकाशित हो गया। पर जब पद्मपुराण पूरा नहीं छापकर उसका चुना हुआ अंशमात्र छापा जाता है, तब इस प्रसङ्गको भी छोड़ा जा सकता था। इस प्रसङ्गके इस रूपमें प्रकाशित हो जानेसे हमारे माननीय जैनबन्धुओंको जो दुःख पहुँचा है, उसके लिये हमें बड़ा ही खेद है। हम अपने जैनबन्धुओंको नम्रताके साथ यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि तात्त्विक सिद्धान्तमें मतभेद होनेपर भी जैनधर्मके महान् तीर्थङ्करोंके प्रति हमारी बड़ी श्रद्धा है और जैनधर्मको हम बहुत ही आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। हम जैनधर्मका किसी भी रूपमें अपमान करना नहीं चाहते। जिन-जिन माननीय जैन आचार्यों और जैन-बन्धुओंने प्रेमपूर्वक हमें सावधान किया है, उनके प्रति हम हृदयसे कृतज्ञ हैं।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

चिम्मनलाल गोस्वामी

सम्पादक–'कल्याण'

Regd. No. A. 175.

श्रीहरिः

भगवन्नामके कीर्तन, स्मरण और जपका माहात्म्य

ये वदन्ति नरा नित्यं हरिरित्यक्षरद्वयम् । तस्योच्चारणमात्रेण विमुक्तास्ते न संशयः ॥
प्रायश्चित्तानि सर्वाणि तपःकर्मात्मकानि वै । यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥
प्रातर्निशि तथा सायं मध्याह्नादिषु संस्मरन् । नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः ॥
विष्णुसंस्मरणादेव समस्तक्लेशसंक्षये । मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विष्णोस्तु कीर्तनात् ॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु । तदक्षयं विजानीयाद् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् । क्व जपो वासुदेवस्य मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥

(पद्म० उत्तर० ७२ । १२—१७)

जो मनुष्य 'हरि' इस दो अक्षरके नामका सदा उच्चारण करते हैं, वे उसके उच्चारणमात्रसे मुक्त हो जाते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तपस्याके रूपमें किये जानेवाले जो सम्पूर्ण प्रायश्चित्त हैं, उन सबकी अपेक्षा श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण श्रेष्ठ है। जो मनुष्य प्रातः, सायं, रात्रि तथा मध्याह्न आदिके समय 'नारायण' नामका स्मरण करता है, उसके समस्त पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। भगवान् विष्णुके स्मरणसे ही अविद्या-अस्मिता आदि सम्पूर्ण क्लेशोंका भलीभाँति क्षय हो जानेपर मनुष्य मोक्षको प्राप्त होता है। स्वर्गकी प्राप्ति तो श्रीविष्णुका एक बार नामोच्चारण करनेसे ही हो जाती है। जप, होम और पूजन आदिके समय जिसका मन भगवान् वासुदेवमें लगा रहता है, उसके उन कर्मोंका फल अक्षय समझना चाहिये। जबतक चौदह इन्द्रोंकी आयु—एक कल्प व्यतीत होता है, तबतक वह अपने शुभ-कर्मोंका फल भोगता रहता है। कहाँ स्वर्गलोककी यात्रा, जहाँसे पुनः लौटना पड़ता है! और कहाँ भगवान् वासुदेवके नामोंका जप, जो मुक्तिका सर्वोत्तम कारण है!